

अंक : १२१

जनवरी-मार्च २०१३

# कथाविंब

कथाप्रधान त्रैमासिक पत्रिका



कहानियां

सुरांत सुप्रिय, डॉ. स्वाति तिवारी,  
मंजुश्री, कमल कपूर, मदन मोहन प्रसाद

सागर-सीपी  
मसुकर अस्थाना



आमने-सामने  
डॉ. बासुदेव

१५ रुपये

जनवरी-मार्च २०१३

(१९७९ से प्रकाशित)

# कथाबिंब

## प्रधान संपादक

डॉ. माधव सक्सेना "अरविंद"

## संपादिका

मंजुश्री

## संपादन सहयोग

जय प्रकाश त्रिपाठी

अश्विनी कुमार मिश्र

अशोक वशिष्ठ

हम्माद अहमद खान

संपादन-संचालन पूर्णतः

अवैतनिक तथा अव्यवसायिक

## ● सदस्यता शुल्क ●

आजीवन : ५०० रु., त्रैवार्षिक : १२५ रु.,

वार्षिक : ५० रु.,

(वार्षिक शुल्क ५ रु. के डाक टिकटों के रूप में भी स्वीकार्य है)

सदस्यता शुल्क मनीऑर्डर, डिमांड ड्राफ्ट द्वारा केवल "कथाबिंब" के नाम ही भेजें.

## ● रचनाएं व शुल्क भेजने का पता ●

ए-१० बसेरा, ऑफ दिन-क्वारी रोड,

देवनार, मुंबई-४०० ०८८.

फोन : २५५१ ५५४१, ९८१९१६२६४८

## ● न्यूयॉर्क संपर्क ●

Namit Saksena,

137 W 13th St. #2R,

NEW YORK NY 7871

(M) 347-237-7334

Naresh Mittal,

(M) 845-304-2414

## ● "कथाबिंब" वेबसाइट पर उपलब्ध ●

[www.kathabimb.com](http://www.kathabimb.com)

e-mail : [kathabimb@yahoo.com](mailto:kathabimb@yahoo.com)

एक प्रति का मूल्य : १५ रु.

कृपया नमूने की प्रति मंगाने हेतु

१५ रु. के डाक टिकट अवश्य भेजें.

(सामान्य अंक : ४०-४४ पृष्ठ)

## कहानियां

"इश्क वो आतिश है गालिब..." - सुशांत सुप्रिय ७

अंतराल - डॉ. स्वाति तिवारी १३

अपना-अपना सुख - मंजुश्री १७

यही तो संसार है - कमल कपूर २३

सामगुली - मदन मोहन प्रसाद २७

## लघुकथाएं

शॉपिंग / राजीव आनंद ९

कमाई-खर्च / डॉ. सतीश दुबे १६

सार्थकता / दिलीप भाटिया २६

आपदा-पीड़ित / ज्ञान देव मुकेश ४७

## गीत / गज़लें / नवगीत

दो गीत / मधु प्रसाद १२

गज़लें / राजेंद्र तिवारी २२

गज़लें / सतपाल "स्नेही" ३२

तीन नवगीत / मधुकर अष्ठाना ४३

## स्तंभ

"कुछ कही, कुछ अनकही" २

लेटर बॉक्स ४

"आमने-सामने" / डॉ. वासुदेव ३३

"सागर-सीपी" / मधुकर अष्ठाना ३९

"बाइस्कोप" ( सविता बजाज ) / कमलेश पांडे ४५

पुस्तक-समीक्षा ४८

## आवरण चित्र : डॉ. अरविंद

नगरपालिका की झील में तैरता राजहंस ( शॉमबर्ग, शिकागो, अमेरिका).

चित्रांकन : सुभाष केकरे, कोटा (राज.)

मौ. १४१३९४१९८३

"कथाबिंब" मुंबई की "संस्कृति संरक्षण संस्था" के सौजन्य से प्रकाशित होती है.

## कुछ कहीं, कुछ अतकहीं

“कथाबिंब” के प्रकाशन का यह ३४वां वर्ष है। इस बीच जीवन में बहुत-से उतार-चढ़ाव आये। सदा मन में एक ही संकल्प रहा कि किसी भी प्रकार से संघर्ष जारी रखना है। साहित्य-सृजन में रत या पत्रिका प्रकाशन या फिर इसी तरह के कार्य जिससे आर्थिक लाभ की उम्मीद न हो, बहुधा परिवार के सदस्यों के अनुसार “समय बर्बाद” करने की श्रेणी में आते हैं। लेकिन कहना न होगा कि मेरे साथ ऐसा नहीं हुआ। मुझे परिवार के सभी सदस्यों से भरपूर सहयोग मिला। आश्वस्त हूँ, यदि कुछ अघटित न घटे तो पत्रिका का प्रकाशन इसी तरह आगे भी जारी रहेगा। कुछ वर्षों से “कथाबिंब” के प्रकाशन में “संस्कृति संरक्षण संस्था, मुंबई” से भी हमें सहयोग मिल रहा है। “सं सं संस्था” ने, इस वर्ष ३ फरवरी को “राष्ट्र निर्माण और युवा शक्ति” विषय पर चेंबूर, मुंबई में एक-दिवसीय संगोष्ठी आयोजित की थी। आयोजन को अच्छा प्रतिसाद मिला। पूरे वर्ष में “सं सं संस्था” अनेक कार्यक्रम करती है। जो व्यक्ति संस्था की गतिविधियों से जुड़ना चाहें कृपया हमें सूचित करें।

इस अंक में “ऋमलेश्वर-स्मृति कथा पुरस्कार-२०१२” के परिणामों की घोषणा भी छपी है (पृष्ठ-५२)। सभी विजेताओं को “कथाबिंब” की ओर से बहुत-बहुत बधाई ! शीघ्र ही सभी को पुरस्कार की राशि और प्रशस्ति-पत्र भेजे जा रहे हैं। उन सभी लेखकों/पाठकों के भी हम आभारी हैं जिन्होंने अभिमत-पत्र भेजकर निर्णय प्रक्रिया में सहयोग किया।

इस अंक की कहानियों की बानगी -- पहली कहानी “इश्क वो आतिश है गालिब...” के लेखक सुशांत सुप्रिय की कहानी “मैं, कैसे हंसूं ?” अब भी “कथाबिंब” के पाठकों के जेहन में अवश्य होगी। आये दिन हम “ऑनर किलिंग” की घटनाओं से दो-चार होते रहते हैं। कारण कोई भी क्यों न हों किंतु २१वीं सदी में भी बहुत-सी बातों को लेकर हमारी सोच में रंच मात्र भी फर्क नहीं आ सका है। प्रस्तुत कहानी में, अलग-अलग जाति वाले, दो चाहने वाले संयोगवश बरसों बाद किसी दूसरे शहर में मिलते हैं तब ही कहीं उनका प्रेम परवान चढ़ पाता है। सशक्त कहानीकारा डॉ. स्वाति तिवारी की कहानी “अंतराल” एक अलग श्रेण की कहानी है -- देश के अधिसंख्य लोगों के लिए गरीबी अभिशाप है। वे हमेशा ही “कतार” में सबसे पीछे खड़े कर दिये जाते हैं, लाइन चाहें राशन की हो या किसी दवाखाने की। जब तक नंबर आता है कई बार यह अंतराल लंबा हो जाता है -- ज़िंदगी और मृत्यु के बीच की दूरी! अगली कहानी “अपना-अपना सुख” के माध्यम से एक अरसे के बाद “कथाबिंब” की संपादिका मंजुश्री पाठकों के सामने उपस्थित हैं। हर कोई सुख की तलाश में अहिःनिश भाग रहा है। सुख की तलाश का कोई भी मार्ग सुगम नहीं होता। यह तलाश मनुष्य को कहां ले जाती है, उससे क्या-क्या करवायेगी यह कभी स्पष्ट नहीं हो पाता। सुख की तलाश एक मृगतृष्णा है। कहानी “यही तो संसार है” (कमल कपूर) अनजान रिश्तों की प्रगाढ़ता की कहानी है। विचित्र परिस्थितियों में नायिका विनी को दो भाइयों ने अपनी बहन माना था। साधारणतया यह बात आयी गयी हो जाती। लेकिन नायिका द्वारा पार्सल खोलने के बाद अंदर की सामग्री देखकर कुछ महीनों पूर्व का सारा घटनाक्रम दोबारा उसकी आंखों के सामने घूम गया। अंक की अंतिम कहानी है “सामगुली” (मदन मोहन प्रसाद)। आतंकवाद की तरह ही नक्सलवाद ऐसी समस्या है जिससे कैसे पार पाया जाये यह न केन्द्र सरकार को मालूम है न ही उन राज्य-सरकारों को जो इससे ग्रस्त हैं। पिता को डरा-धमकाकर नक्सली सरदार, नट सामगुली को अपने साथ ले जाता है और उसे ट्रेनिंग देता है तथा अपने दल में शामिल कर लेता है। मौक़ा पा कर सामगुली भागकर बंबई आ जाता है और रिक्शा चलाने लगता है। लेकिन सामगुली के किये की सज़ा उसके पूरे परिवार को मिलती है। बहन को छोड़कर सरदार सबको ख़तम देता है।

समय का रथ अबाध गति से चलता रहता है। ऋतुएं और मौसम समय के चक्र के साथ बदलते रहते हैं। किंतु नहीं बदलती है आम भारतीय आदमी की स्थिति। उसे नहीं मालूम है कि वह कहां जाकर गुहार लगाये। रोज़ बड़ी-बड़ी योजनाओं की घोषणा होती है। अरबों-खरबों का बजट पास होता है। पर स्थिति, वही ढाक के तीन पात। पांच सितारा होटलों में बड़े-बड़े “कॉन्क्लेव” होते हैं, भाषण होते हैं, हर मेज़ पर बिसलरी की बोटलें रखी होती हैं, पुरस्कार बांटे जाते हैं, प्रीति-भोज होते हैं। लेकिन मूलभूत समस्याओं का निवारण कैसे किया जाये इस पर कोई कारगर योजना सामने नहीं आती। हमारी मूल समस्या है जनसंख्या विस्फोट को कैसे रोका जाये ? वर्तमान में, युवा पीढ़ी के समर्थवान, शिक्षित लोग विश्व के अनेक देशों में जाकर बहुत अच्छा काम कर रहे हैं। भारत का परचम लहरा रहे हैं। इस संदर्भ में अधिक

जनसंख्या को एक “एसेट” या “लाभ” समझा जा रहा है। किंतु सुरसा के मुंह की तरह बढ़ने वाली बेरोज़गारों की संख्या निश्चित ही देश के सीमित संसाधनों पर एक अनचाहा बोझ है। परिवार नियोजन देश की सर्वोपरि प्राथमिकता होनी चाहिए। सु-शासन के अभाव में किसी भी प्रकार के विकास का लाभ गरीब लोगों तक पहुंच ही नहीं पाता। एक सोचे समझे षडयंत्र के तहत धर्म, भाषा और जाति के नाम पर लोगों को एकजुट होने से रोका जाता है। अंग्रेजों द्वारा अपनायी, बांटो और राज्य करो आज भी हमारे कर्णधारों की नीति है।

पिछले दिसंबर में, दिल्ली की बलात्कार की घटना के बाद सब तरफ से कठोर क़ानून बनाने की मांग उठी। - बलात्कारी को फांसी की सज़ा देने के प्रावधान के बारे में सोचा जाये। विशेष अदालतें बनायी जायें - तुरत-फुरत एक समिति बनायी गयी। पहले बहस होने लगी कि बलात्कारी की उम्र की सीमा क्या मानी जाये - १६ साल या १८ साल! लड़की को घूरना, उसका रास्ता रोकना और पीछा करना अपराध ठहराया गया। साथ ही निर्देश दिये गये कि बसों व अन्य वाहनों में पर्दे नहीं होने चाहिए। कांच पर रंगीन फ़िल्म नहीं होनी चाहिए। किंतु चार महीनों के बाद भी इस तरह के अपराधों में कोई कमी नहीं आयी है। हां, पुलिस के लिए “कमाई” करने का एक और ज़रिया हाथ लग गया है। और जैसा कि पहले भी कहा जा चुका है, क़ानून का कठोर होना आवश्यक है इस संबंध में दो मत नहीं हो सकते। पर क्या राजनैतिक हस्तक्षेप को रोकना संभव है ? हाल ही में उत्तर प्रदेश के एक मंत्री का बयान आया कि मेरे सामने पुलिस अधिकारी बैठ नहीं सकते। यदि कोई बैठा तो चौबीस घंटे के भीतर उसका तबादला कर दिया जायेगा।

बलात्कार ही नहीं, वर्तमान में, हर तरह के अपराधों में वृद्धि हुई है। यह प्रशासनिक समस्या से अधिक समाजशास्त्रीय समस्या है। भूख, प्यास की तरह ही “काम” मनुष्य की एक नैसर्गिक ज़रूरत है। जब आदमी की काम पिपासा सामान्य प्रकार से पूरी नहीं होती तो वह बल का प्रयोग करने पर आमादा हो जाता है। लड़की छोटी है या बड़ी, उसे कुछ नहीं सूझता। आजादी के बाद केवल कुछ बड़े-बड़े शहरों के इर्द-गिर्द औद्योगीकरण के कारण, काम की तलाश में आदमी को मजबूरन घर छोड़ना पड़ा। बढ़ती महंगाई ने संयुक्त परिवारों में संध लगानी शुरू कर दिया। काम मिला तो ठीक अन्यथा परिवार से विलग, बड़े शहरों की खानाबदोश परिस्थितियों से कुंठित और संतुष्ट होकर आदमी ग़लत दिशाओं में भटकने लगा। वापस जाना उसके लिए संभव नहीं था। वह एक मोहभंग से ग्रसित हो गया। यहां उसके लिए कुछ भी वर्जित नहीं था - चकले, शराब, ड्रग्स, डान्स बार। कोई रोक-टोक नहीं। और अनियंत्रित इच्छाओं की पूर्ति के लिए सामने थी अपराध की दुनिया। सैटेलाइट टीवी और इंटरनेट ने आग में घी का काम किया। यहां सभी कारणों को गिना पाना संभव नहीं है पर यह ज़रूरी है कि समस्या के सभी पहलुओं पर गंभीरता से विचार करके, समय रहते आवश्यक क़दम उठाये जायें।

नित नये घोटाले उजागर हो रहे हैं। पिछले पांच-छः सालों के घोटालों की सूची काफ़ी लंबी बनेगी। मगर कोई फ़र्क नहीं पड़ेगा। कुछ दिनों तक एक घोटाला चर्चा में रहता है उसके थोड़े दिनों बाद फिर कुछ और। आजकल कोयला घोटाला चर्चा में है। इसमें कोयला मंत्री और प्रधान मंत्री का नाम सामने आया है कि उन दोनों ने सी बी आई की रिपोर्ट बदलवायी। यह अपने आप में गंभीर आरोप है। किंतु इससे कहीं बड़ा अपराध यह है कि इतने वर्षों तक कोयले की कृत्रिम कमी के कारण तापीय बिजली-घरों ने कम बिजली उत्पादित की जिसके कारण औद्योगिक उत्पादन में जो कमी हुई उसका जिम्मेदार कौन है ? क्यों देश के विभिन्न भागों में सूखे की स्थिति उत्पन्न हुई ? २-जी घोटाले के लिए ए. राजा का कहना है कि उसने जो कुछ किया उसकी जानकारी प्रधानमंत्री जी को थी। किंतु स्वच्छ छवि वाले मनमोहन सिंह जी मौन-व्रत तोड़ना नहीं चाहते।

आजकल अन्ना हज़ारे, केजरीवाल और बाबा रामदेव सब चुप हैं। या तो सी बी आई और आयकर विभाग के नोटिसों के जबाव देने में व्यस्त हैं या फिर कोई नयी रणनीति बनाने की तैयारी में लगे हैं ! चलते-चलते : देश का क़ानून हर किसी के लिए एक-सा नहीं है। यदि आप संजय दत्त हैं तो अपराध चाहे देशद्रोह का हो तो भी आपको छूट मिल सकती है क्योंकि आपके पीछे ३०० करोड़ रु. लगे हैं। यहां तक कि कुछ लोग सज़ा माफ़ करने के पक्ष में जी जान से लगे हैं। क्या जिन लोगों ने पैसा लगाया था वे सब बातों से अनजान थे ? अमरीका में बोस्टन में हुए आतंकी हमले के अपराधियों को तीन दिन में पकड़ लिया गया किंतु १५-२० दिनों पश्चात भी बैंगलौर में हुए हमले के बारे में अब तक कोई सुराग नहीं मिला है। इसे क्या समझा जाये ?

अरविंद





## लेटर-बॉक्स



►► 'कथाबिंब' का नया अंक मिला. खुशी है कि अनेक आर्थिक परेशानियों के बावजूद आप इसके प्रकाशन को व्यवस्थित रूप से जारी रखने में जुटे हुए हैं. महत्वपूर्ण यह कि आपने इसे समयबद्ध त्रैमासिक पत्रिकाओं की श्रेणी में सम्मिलित कर अपनी जीवन्तता तथा समर्पण भाव का परिचय दिया है.

इस अंक में औरत की मर्मांतक ज़िंदगी को रेखांकित करती मधु अरोड़ा की कहानी 'रिशतों की भुरभुरी ज़मीन' मन को छू गयी. कहानी के प्रारंभ की स्थितियां आज के व्यस्त और भागमभाग समय में घरेलू महिला के एकाकी या कहा जाये उपेक्षित जीवन को बखूबी चित्रित करती हैं. मधुजी के अनेक साक्षात्कारों से रूबरू होने का अवसर मिलता रहता है. वे कहानी जगत में भी अपनी विशेष पहचान रखती हैं यह पहली बार जाना.

मणिका जी की कहानी पढ़ने का लंबे समय बाद मौका मिला. कहानी वर्ग विशेष से संबद्ध है. समर्पित, निष्ठावान तथा समझौते की अपेक्षा अपने उसूलों से जीवन संवारने वाले व्यक्ति के चरित्र को जीवंत रूप में सामने खड़ा कर देती है. थमा हुआ लेखन पुनः गति ले रहा है यह जानकर मुझे ही नहीं कथाजगत के हर पुराने रचनाकार के लिए सुकून-खबर हो सकती है.

'आमने-सामने' में हितेश व्यास के बारे में बहुत कुछ जानने का मौका मिला. पिछले कुछ वर्षों से उनकी निरंतर सक्रियता के अनेक बीजमंत्र उन्होंने अपनी बात में उजागर किये हैं. ग़ज़लें भी अच्छी बन पड़ी हैं. 'सागर-सीपी' के महर्षि ('महरिष') जी के बारे में क्या कहा जाय, वे प्रणेय हैं.

सतीश दुबे

७६६, सुदामा नगर, इंदौर-४५२००९.

►► 'कथाबिंब' का १२०वां अंक मेरे सामने है. 'कुछ कही-कुछ अनकही' हमेशा की तरह खूब है. यकीनन हर पाठक को लगता होगा कि वही तो मैं भी कहना चाहता था. अपनी सोच को उचित शब्द देना भी एक बहुत बड़ी उपलब्धि है.

कहानियां एक से बढ़कर एक हैं. अच्छी, स्तरीय कहानियां पढ़ने की ख्वाहिश 'कथाबिंब' से ही पूरी होती है. श्रीरंग की कविता 'नाकामी' एक ऐसा सवाल उठाती है जो अक्सर हम सब को उद्वेलित करता रहता है. लघुकथा 'डस्टबिन' में नरेंद्र कौर छाबड़ा ने नयी पीढ़ी की युवती की विकृत किंतु वास्तविक सोच से परिचित कराया है. लघुकथा का सुखद अंत संतोष प्रदान करता है. शुभदा पांडेय की लघुकथा 'सौदा' भी बहुत प्यारी है. सभी रचनाकारों को तथा आपको हार्दिक बधाई.

ओमप्रकाश बजाज

बी-२, गगन विहार, गुप्तेश्वर,

जबलपुर-४८२००९ (म. प्र.)

►► 'कथाबिंब' के अंक बराबर मिल रहे हैं. यह अपनी तरह की कथाप्रधान त्रैमासिक पत्रिका है. कहानी से अलग भी कविताएं, रेखांकन या अन्य सामग्री, लघुकथाएं, स्तंभ,

आप दे रहे हैं. बहुत उपयोगी हैं. कहानियों का चयन आप सावधानी से कर रहे हैं, उपयोगी कहानियां ही 'कथाबिंब' में पढ़ने को मिलती हैं.

अक्टूबर-दिसंबर २०१२ का अंक मुझे प्राप्त हुआ. डॉ. विवेक द्विवेदी, मणिका मोहिनी, मधु अरोड़ा से लेकर उर्मि कृष्ण, आलोक कुमार आदि की कहानियां, लघुकथाएं पढ़ चुका हूँ. ग़ज़लें, कविताएं भी पठनीय लगीं. राजेंद्र निशेश तो हमारे चंडीगढ़ से ही हैं. आपका संपादकीय 'कुछ कही, कुछ अनकही' हमेशा की तरह उपयोगी है. लेटर बॉक्स में छपे पत्र, 'कथाबिंब' की लोकप्रियता की झलक देने वाले हैं. इतना श्रम, इतना समय आप कैसे जुटा लेते हैं? 'सागर सीपी' और 'आमने-सामने' रेगुलर पढ़ता आया हूँ. कभी मुझे भी बहुत पहले आपने इस शृंखला में शामिल किया था.

प्रो. फूलचंद मानव

२३९, दामो एंक्लेव, ढकौली, जीरकपुर,

जि.- मोहाली (पंजाब)-१६०१०४,

►► 'कथाबिंब' अंक अक्टूबर-दिसं. १२ पढ़कर यह कह सकता हूँ कि पत्रिका रचनाओं के स्तर पर कोई समझौता नहीं करती. क्या हुआ जो मैं इस स्तर की कहानी नहीं लिख पाता, अच्छी और बहुत अच्छी कहने का एक

हक और तमीज़, बतौर पाठक तो रखता ही हूँ. डॉ. विवेक द्विवेदी की कहानी 'पलायन' इस अंक की एक बेहतर कहानी है वहीं मधु अरोड़ा की 'रिशतों की...' इसलिए ज़्यादा काबिले तारीफ़ है कि वे अंत तक पाठक को गुमराह किये रहती हैं और अंत में हतप्रभ करके छोड़ देती हैं – शायद एक कहानी का यह एक अच्छा गुण है जो पाठक की सोच से कहीं आगे निकल जाती है.

हितेश व्यास की ग़ज़लें जहां मन को छूनेवाली हैं वहीं आदरणीय महर्षि जी की ग़ज़लें भीतर तक उतर जाती हैं. क्या बात कही है.... 'ये मुखौटों पर मुखौटे किसलिए, अच्छे खासे आदमी की जात हो.' और उनका यह कथन कि 'कथ्य की तीक्ष्णता पर शिल्प की बलि नहीं दी जा सकती' नये प्रयोगवादी ग़ज़लकारों को एक नसीहत है.

लघुकथाओं में शुभदा पांडेय की 'सौदा' तथा नरेंद्र कौर की 'डस्टबिन' अच्छा प्रभाव छोड़ती हैं साथ ही आलोक सातपुते का 'टैलेट हंट' अच्छी चिकोटी काटता है.

अन्य स्तंभ अपनी गुणवत्ता के साथ विद्यमान हैं. आपका संपादकीय सम समयिक तथा आवरण प्रभावी है.

**के. पी. सक्सेना**  
सांस्कृतिक भवन मार्ग, टाटीबंध,  
रायपुर-४९२०९९.

► 'कथाबिंब' का १२०वां अंक (अक्टूबर-दिसंबर २०१२) प्राप्त कर हर्ष हुआ. अनेकानेक धन्यवाद! पत्रिका के प्रकाशन एवं संपादन का कार्य अत्यंत श्रमसाध्य होता है और समर्पित यत्न की मांग करता है. इस संदर्भ में 'कथाबिंब' का 'प्रत्यक्ष किम् प्रमाणम्'. पत्रिका के संपादन मंडल को साधुवाद प्रेरित करता हूँ.

**देवदत्त वाजपेयी**

२०२/४, सागर दर्शन, सेक्टर-१८,  
नेरूल (प.), नवी मुंबई-४००७०६

► 'कथाबिंब' की मैं नियमित पाठिका हूँ. अक्टूबर-दिसंबर २०१२ का अंक प्राप्त हुआ. इस अंक में सभी चयनित रचनाएं बेहतर एवं पठनीय हैं. रचनाओं ने आत्मा के तारों को झकृत किया है.

पत्रिका का बाह्य आवरण अपने लघुरूप में जितना आकर्षक है, उतना ही सारगर्भित आंतरिक भी. सभी कहानियां नयापन लिये हुए हैं और उनमें सटीक हथौड़े

की मार है. विशेषकर श्री ताराचंद मकसाने की कहानी मार्मिकता लिये हुए है. आपका क्षीरग्राही चयन अत्यंत प्रशंसनीय एवं हृदयग्राही है. स्थापितों के साथ नवोदितों को प्रोत्साहन आपकी दूरदर्शिता है.

**सीमा शाहजी**

३२५, एम. जी. रोड, थांडला-४५७७७७

► अक्टूबर-दिसं. २०१२ अंक मिला. कहानियां तो हमेशा ही स्तरीय होती हैं तभी तो इस पत्रिका का इंतज़ार व्यग्रता से करती हूँ. इस बार आपका संपादकीय बड़ा ही सटीक है. दामिनी जैसे कई अन्य कांड हो चुके हैं. कहां गये हमारे नैतिक मूल्य – लानत है हम पर, हमारे संस्कारों पर! काश आपका संपादकीय घटिया मानसिकता वाले लोग और कुर्सी से चिपके लोग समझ पाते. कहानियां सारी की सारी मन को छू जाती हैं.

तारकेश्वर शर्मा की कविता सच में आग जलाती है. लेखकों के मो. नं. भी सभी के लिखें ताकि संपर्क में सुविधा हो. कुल मिलाकर अंक हमेशा की तरह सराहनीय है.

**ऊषा मेंहतादीपा**

'प्रतीक्षा कुटीर', डुगली,  
जि. चंबा-१७६३१९ (हि. प्र.)

► कथाबिंब का अक्टूबर-दिसंबर २०१२ का मनुहारी अंक प्राप्त हुआ. पत्रिका में प्रकशित सभी लघुकथाएं बेहतर बनी हैं. कहानियों में 'पलायन', 'तो यह बात है', 'सरोकार अपने-अपने' अच्छी लगीं. ग़ज़लें व कविताएं मन मोह रही हैं. पत्रिका की स्पष्ट छपाई, संपादन मन मस्त कर देता है.

**रामेश्वर प्रसाद गुप्त 'इंदु'**

बड़ागांव, झांसी-२८४१२१ (उ. प्र.)

► 'कथाबिंब' का अक्टूबर-दिसंबर २०१२ अंक मिला. पत्रिका का यही अंक ही क्यों मुझे इसके लगभग सभी अंक मिल जाते हैं और मैं उन्हें पूरा पढ़ता भी हूँ. मुझे इस पत्रिका में जो सबसे ज़्यादा अच्छा लगता है वह इसकी सादगी और सहजता है. कोई साहित्यिक चोचलेबाज नहीं. कोई प्रोपेगंडा नहीं. साहित्य को साहित्य ही बने रहने की सहज भावना ही 'कथाबिंब' को सभी से अलग करती है. अतुलनीय बनाती है.

**डॉ. पूरन सिंह**

२४० बाबा फरीदपुरी, वेस्ट पटेलनगर,  
नयी दिल्ली-११०००८.

►► 'कथाबिंब' का अक्टूबर-दिसंबर २०१२ अंक 'कुछ कही-कुछ अनकही' के अंतर्गत अन्य आवश्यक जानकारियों और बातों के अलावा अंतर्मन को झकझोर देने वाली दिल्ली की बलात्कार की मार्मिक व दुखद घटना की चर्चा की गयी है।

शायद पहली बार इस देश में बलात्कार के विरुद्ध यहां की जनता व्यापक पैमाने पर उठ खड़ी हुई। शहरों, कस्बों और गांवों में इस नृशंस व बर्बर वारदात के खिलाफ जबर्दस्त आंदोलन हुआ। पूरा देश उद्वेलित हो उठा। शीघ्रताशीघ्र बलात्कारियों को दंड देने के लिए कठोर से कठोरतम कानून का प्रावधान किया गया। तब ऐसा महसूस होने लगा था कि सचमुच अब देश की ऐसी घटनेवाली निंदनीय घटनाओं से किसी हद तक निजात मिल जायेगी, किंतु यहां तो 'ज्यों-ज्यों दवा दी गयी, मर्ज बढ़ता ही गया' वाली कहावत चरितार्थ हो रही है। बलात्कार की घटनाओं की बाढ़ आ गयी है। शायद ही कोई दिन ऐसा होगा जिस दिन देश के किसी न किसी हिस्से में दुष्कर्म को अंजाम न किया गया हो।

इससे साफ़ जाहिर है कि इसके निदान के लिए कठोर कानून तो ज़रूरी है ही इसके साथ ही विकृत मानसिकता से ग्रस्त नागरिकों को अपनी कुत्सित सोच और नजरिये में बदलाव लाने की सख्त आवश्यकता है। समाज को जागरूक होने की आवश्यकता है। बलात्कारी चारपाई व बिस्तर में छिपे हुए उस खटमल की तरह होता है, जिसके काटने के बाद ही उसकी उपस्थिति का आभास होता है। किसी ने ठीक ही कहा है।

"किस रावण की बांहे काटू, किस लंका में आग लगाऊं,  
घर-घर रावण, घर-घर लंका, इतने राम कहां से जाऊं"

अब देखने वाली बात होगी कि कठोर कानून घटना को रोकने में कहां तक सक्षम होता है।

कहानियों में 'पलायन' (डॉ. विवेक द्विवेदी), ज़मीन से जुड़ी हुई कहानी है, जो ग्रामीण क्षेत्रों के युवावर्ग की स्थिति से रू-ब-रू करवाती है। 'प्रत्यावर्तन' (ताराचंद मकसाने) भी हृदय-स्पर्शी कहानी है। बाइस्कोप के माध्यम से रचयिता व गीतकार अभिलाष की कठिन व समस्याओं से त्रस्त पर प्रेरक जिंदगी से अवगत होने का मौक़ा मिलता है। 'आमने-सामने' के द्वारा हितेश व्यास से परिचित तो हुआ ही, उनकी ग़ज़लों को पढ़ने का सुअवसर भी मिला।

**मुकुंद लाल**

डीपूगढ़ा, शिवमंदिर के पास,  
हजारीबाग-८२५३०१

►► 'कथाबिंब' का अक्टूबर-दिसंबर २०१२ अंक प्राप्त हुआ। पहले स्तंभों से पढ़ना शुरू किया। सागर-सीपी और 'बाइस्कोप' पढ़कर ही पत्र लिख रहा हूँ। सागर सीपी में आपने प्रख्यात पिंगल शास्त्र (अरुजी) श्री महर्षिजी का साक्षात्कार प्रकाशित किया है। महर्षिजी जीवित किंवदंती हैं - अरुज के मामले में बड़े-बड़े जाने माने शायर उनके अरुजी ज्ञान से उपकृत हुए हैं। हिंदी में ग़ज़ल लेखन हेतु अरुज (उर्दू पिंगल शास्त्र) की बारीकियां उन्होंने ही अपने ग्रंथों में समझायी हैं। इन पत्रिकाओं में वे अरुज की पाठशाला में ग़ज़ल के छात्रों को प्राथमिक पाठ पढ़ाते हैं। उनकी सेवाओं की जितनी भी प्रशंसा की जाये, कम है। दूसरे सविता बजाज ने फिर एक बार अभिलाष पर अच्छा लिखा है तथापि बहुत संक्षिप्त है।

**चंद्रसेन विराट**

१२१, वैकुंठधाम कॉलोनी, आनंद बाजार के  
पीछे, इंदौर-४५२०१८ (म. प्र.)

►► 'कथाबिंब' (अंक ११९) देखने का सुयोग प्राप्त हुआ। मायानगरी मुंबई से स्वस्थ मनोरंजन व वैचारिक प्रतिबद्धता की सुंदर पत्रिका विगत तीन दशकों से अनवरत प्रकाशित हो रही है, जानकर प्रसन्नता हुई। जैसा कि नाम से प्रतिध्वनित होता है। कथा-साहित्य को केंद्र में रखकर प्रकाशित होने वाली पत्रिका में सामान्यतः सभी विधाओं का प्रचुर प्रतिनिधित्व हो रहा है।

संदर्भित अंक में उम्दा ग़ज़लों के साथ कुछेक निम्न स्तर की ग़ज़लें भी स्थान पा गयी हैं जो खटकता है। 'बाइस्कोप' में सविता बजाज जी का प्रयास प्रशंसनीय है। 'आमने-सामने' तथा 'सागर-सीपी' स्तंभ सार्थक हैं। कहानियों 'एक था हीरो' (गोविंद उपाध्याय), 'खारा पानी, मीठा पानी' (डॉ. रमाकांत शर्मा) लघु कथा 'करौदे का पेड़' व 'आंखें' ने विशेष प्रभावित किया। मंगल कामनाएं स्वीकारें-

'कथाबिंब' साहित्य को है अनुपम वरदान,  
कथा-जगत में पा रही यह समुचित सम्मान।  
यह समुचित सम्मान, मिले इसको अंत तक,  
कीर्ति-किरण प्रसरित हो जाये दिग दिगंत तक।  
कहें 'शारदानंद मुकर हो जन जीवन प्रतिबिंब,  
आशातीत सफलता अर्जित करे कथाऽबिंब....।'

**पं. सुबोध कुमार दुबे**

'आनंदाश्रय' १४/७६५, इंदिरानगर,  
लखनऊ-२२६०१६.

कहानी

इश्क वो आतिश है ग़ालिब...

सुशांत सुप्रिय

सुमी

**क** रवट बदलते-से समय में वह एक उनींदी-सी शाम थी. एक मरते हुए दिन की उदास, सर्द शाम. काजल के धब्बे-सी फैलती हुई. छूट गयी धड़कन-सी अनाम. ऐसा क्या था उस शाम में? धीरे-धीरे सरकती हुई एक निस्तेज शाम थी वह जिसे बाक्री शामों के बासी फूलों के साथ समय की नदी में प्रवाहित किया जा सकता था. उस शाम की चटाई को मैंने मोड़ कर रख दिया था एक किनारे.

लेकिन ज़रूर कुछ अलग था उस शाम में. घुटने मोड़े वह शाम अपनी गोद में कोई खास चीज समेटे थी. कौन जानता था तब कि उन यादों के रंग इतने चटकीले होंगे कि दस बरस बाद भी...कौन जानता था कि एक सलोना-सा सुख जो अधूरा रह गया था उस शाम, कि एक छोटी-सी बेजुबान इच्छा जो खामोश रह गयी थी उस शाम, आज न जाने कहां से स्वर पा कर कोयल-सी कूकने लगेगी मेरे जीवन में. कौन जानता था कि समय के अंधियारे में अचानक उस शाम की फुलझड़ियां जल उठेंगी और रोशन कर देंगी तन-मन को. मुझे कहां पता था कि उस शाम के बगीचे में मौलश्री के शर्मिले, खुशबूदार फूल झरते रहे थे. आज कैसे दिसंबर की वह शाम जून की इस सुबह समय के आंगन में मासूम गिलहरी-सी फुदक रही है.

यादों के समुद्र के इस पार मैं हूँ. समय की सांप-सीढ़ी से बेखबर. वह शाम आज यादों के समुद्र-तट पर स्वागत के सिंह द्वार-सी खड़ी है. मैं हैरान हूँ वहां तुम्हें खड़ा पा कर — लहरों के हहराते शोर के पास आश्वस्ति-सी एक सुखद उपस्थिति....

कॉलेज में भैया के दोस्त थे तुम. हमारे यहां बेहद पढ़ाकू माने जाते थे तुम....शिष्ट और सौम्य. न जाने क्यों तुम्हें देख कर मेरे मन में गुदगुदी-सी होने लगती थी...तुम

जब मुस्करा कर मुझे 'हलो सुमी' कहते तो मैं भीतर तक खिल जाती — मेरे गालों की लाली से बेखबर थे क्या तुम? तुम्हारी हर अदा को कनखियों से देखती मैं तुम्हारी खामोश उपस्थिति से भी खुश हो जाती.

पहली बार यूनिवर्सिटी लाइब्रेरी में मिले थे तुम — मुझे लंबी चोटी में सलवार-कमीज़ पहने एक परेशान-सी लड़की कोई किताब ढूंढती हुई. तुमने उस दिन लाइब्रेरी की हर शेल्फ़ छान मारी थी और आखिर वह किताब मुझे ढूंढ कर दे ही दी थी. मैं तुम्हारी कौन थी? ऐसा क्यों था कि जब तुम काफ़ी दिनों तक दिखाई नहीं देते या घर नहीं आते तो मैं गुमसुम रहने लगती थी? चाय में चीनी की बजाय नमक डाल देती? दाल या सब्जी बिना नमक वाली बना देती? रात में कमरे की बत्ती जलती छोड़ कर चश्मा पहने-पहने सो जाती?

जिस दिन पता चला कि तुम अब एम.बी.ए. की पढ़ाई करने आई.आई.एम., अहमदाबाद चले जाओगे, मैं बाथरूम में फिसल कर गिर गयी थी. खाना बनाते समय मैंने अपना हाथ जला लिया था. उसी दिन मैंने वह कविता लिखी थी 'क्या तुम जानते हो प्रिय' : ओ प्रिय/मैं तुम्हारी आंखों में बसे/दूर कहीं के गुमसुम खोयेपन से/प्यार करती हूँ/ मैं घाव पर/ पड़ी पपड़ी-सी/तुम्हारी उदास मुस्कान से/प्यार करती हूँ/मैं हमारे बीच पड़ी/अनसिलवटी चुप्पी से भी/प्यार करती हूँ/हां प्रिय/मैं उन पलों से भी/प्यार करती हूँ/जब एकाकीपन से ग्रस्त मैं/तुम्हारे चेहरे में/अपने लिए/आईना ढूंढती फिरती हूँ/और खुद को/बहुत पहले खो गयी/किसी अबूझ लिपि के/चटखते अक्षर-सी/बिखरती महसूस करती हूँ...'

भैया को तुम्हारे प्रति मेरे आकर्षण का पता चल गया होगा तभी तो एक दिन उन्होंने मुझसे कहा था — 'सुमी, इंडिया में कास्ट एक बहुत बड़ा फ़ैक्टर होता है. हमें इसी समाज में रहना होता है. जात-पात के बंधनों को हम इग्नोर



२८ मार्च १९६८ (पटना)

डी.स. (अंग्रेजी) ऑनर्स, सम.स. (अंग्रेजी), सम.स. (भाषा विज्ञान), सम. फ़िल. (अंग्रेजी)



**प्रकाशन** : देश की प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं में कविताएं, कहानियां व अनुवाद-कार्य प्रकाशित. 'हत्यारे' (२०१०) व 'हे राम!' (२०१२) कथा संग्रह प्रकाशित. कविताएं व कहानियां पुरस्कृत, कई भाषाओं में अनूदित तथा आकाशवाणी दिल्ली से प्रसारित. 'कथाबिंब' द्वारा आयोजित कमलेश्वर स्मृति कथा पुरस्कार २००८ में सर्वश्रेष्ठ कहानी पुरस्कार प्राप्त. 'कथाबिंब' में प्रकाशित होने वाली यह चौथी कहानी.

**विशेष** : डी. स. वी. कॉलेज, जालंधर, में कुछ वर्ष (अंग्रेजी) व्याख्याता (१९९४-९६).

**रुचि** : गायन, शतरंज व टेबल-टेनिस का शौक. स्केचिंग में भी रुचि.

**संप्रति** : सरकारी सेवा में उच्चाधिकारी.

नहीं कर सकते.'

तुम और मैं — हम अलग-अलग जातियों के थे.

वह शाम कैसी थी. उस शाम जब मैं बुखार में पड़ी थी, तुम भैया से मिलने घर आये थे. अगले दिन तुम अहमदाबाद जा रहे थे. क्या यह दैवी इतिफ़ाक़ नहीं था कि उस शाम घर पर और कोई नहीं था? सब लोग एक शादी में गये थे.

मैंने दरवाज़ा खोला था और तुम जैसे अधिकार-पूर्वक भीतर आ गये थे. क्या मेरा चेहरा बुखार की वजह से तप रहा था? वर्ना तुमने कैसे जाना कि मेरी तबीयत ठीक नहीं थी?

'अरे सुमी, तुम्हें तो तेज़ बुखार है.' मेरे माथे को छू कर तुमने कहा था.

मेरे माथे पर तुम्हारे हाथों का स्पर्श पानी की ठंडी पट्टी-सा पड़ा था.

'दवाई ले रही हो कोई?' तुम्हारे स्वर में चिंता थी. ऐसा क्या था जो तुम्हें भी मेरी ओर खींचता था? क्या तुम्हें इसका अहसास था?

तुम देर तक मेरे सामने के सोफ़े पर बैठे रहे थे. क्या इस बीच मेरा बुखार बढ़ गया था? मेरी आंखें मुंद-सी क्यों गयी थीं? जब आंखें खुली थीं तो तुम मेरे बग़ल में बैठे चिंतित स्वर में पूछ रहे थे — 'सुमी, क्या तुम ठीक हो? तुम्हारा बुखार बहुत तेज़ लग रहा है. लाओ, मैं तुम्हारे माथे पर ठंडे पानी की पट्टी रख दूँ.'

यह सुन कर बीमारी में भी मैं कुछ सकुचा-सी गयी थी.

तुम बहुत देर तक मेरी बग़ल में बैठ कर मेरे माथे पर ठंडे पानी की पट्टियां बदलते रहे थे. मेरी आंखें मुंद गयी थीं. अपने कोमल स्पर्श की हिलोरें मेरे भीतर छोड़ कर तुम बाक़ी लोगों के आने से पहले ही चले गये थे. मुझे एक पारदर्शी, झीने सुख में भिगो कर.

बस, इतना ही तो हुआ था उस आख़िरी शाम...जब तुम मुझसे मिले थे...

क्रिस्मत भी कैसे-कैसे खेल खेलती है. क्या नाम था तुम्हारे और मेरे इस रिश्ते का? कल तुम अहमदाबाद चले जाने वाले थे. हमारे बीच अलग-अलग जातियों की ऊंची दीवार थी...

लेकिन तुम्हारा वह लंबा जीवन इतना सूना और उदास कैसे रह गया? क्या तुम्हारी पतंग का कोई धागा मेरी उंगली में बंधा रह गया था? एक बार कहा तो होता कि तुम भी मुझसे...

कल दस बरस बाद जब अहमदाबाद आयी और कॉन्फ़्रेंस में अचानक तुमसे मुलाक़ात हो गयी तो मेरे मन के ताल में तुम्हारी उपस्थिति गुडुप-सी पड़ी स्मृतियों की अनगिनत लहरें जगा गयी. हिम्मत करके मैंने भरपूर निगाहों से तुम्हें एकटक देखा. तुम अब भी उतने ही आकर्षक लगे. क्या मैं तुम्हारी आंखों में भी अपने लिए चाहत के रंग देख रही थी?

लघुकथा

## शॉपिंग

✍ राजीव आनंद

मान्टी अंग्रेजी स्कूल में पढ़ रहा था, आईसीएसई बोर्ड परीक्षा की तैयारी कर रहा था. पिता का देहांत पहले ही हो चुका था तथा मान्टी की मां सरकारी स्कूल की शिक्षिका थी. मान्टी की मां कई बार उसे सरकारी स्कूल में दाखिला लेने को कह चुकी थी पर मान्टी तैयार नहीं होता था. मान्टी का कहना था कि सरकारी स्कूल में सिर्फ गरीब लोगों के बाल-बच्चे पढ़ते हैं, वो भी हिंदी मीडियम से. उसे हिंदी मीडियम से गरीब बच्चों के साथ सरकारी स्कूल में पढ़ने का कोई शौक नहीं है.

मान्टी की मां सरकारी स्कूल में नौकरी करते हुए मान्टी को कॉन्वेंट स्कूल में पढ़ा रही है. मान्टी के दादा गांव में बीमार होने के बाद शहर आ गये थे. फेफड़े की झिल्ली में आये संक्रमण से पीड़ित मान्टी के दादा को बहुत इलाज करवाने के बाद भी बचाया नहीं जा सका और उनका देहांत हो गया. मान्टी को ही अपने दादा का दाह संस्कार करना था.

मान्टी की मां ने उसे सब कुछ समझा कर रुपये दिये और कहा कि श्मशान ले जाने के लिए सारी चीजों का इंतजाम उसे जल्द करना होगा क्योंकि शव को ज्यादा देर तक घर पर नहीं रखा जा सकता. मान्टी कफ़न और अन्य सामग्रियों को लाने के लिए घर से निकला ही था कि रास्ते में उसके मित्र अंशु का फ़ोन आया, अंशु फ़ोन पर कह रहा था कि अरे मान्टी आज सुबह ट्यूशन पर नहीं आये कहां हो?

मान्टी बोला यार दादाजी गुजर गये आज सुबह, तुम मुझे चौक पर मिलो कफ़न वगैरह लेने के लिए शॉपिंग करने जा रहा हूं.

✉ प्रोफेसर कॉलोनी, न्यू बरगंडा, गिरिडीह, झारखंड-८१५३०१. मो.-९४७१७६५४१७

हां, मैं भी तुमसे प्रेम करती थी. पर कभी कह नहीं पायी. उस शाम भी नहीं जो पीले पत्रों वाली किसी पुरानी किताब में दबे किसी मोरपंख-सी आज बाहर निकल आयी है. मैं किसी निर्जन तट पर पड़ी सीपी थी, तुम्हारी उस लहर की प्रतीक्षा में जो मुझे फिर से भिगो कर साथ बहा ले जायेगी अपने अनंत समुद्र की गोद में. और आखिर कल शाम मैं उस समुद्र के आगोश में थी...

मनु

अतीत के समुद्र से यादों के मोती चुगने की हसरत अब भी जवां है हमारे दिलों में. एक ऐसा अतीत जिसमें मैं था, तुम थीं, और अब हम उन यादों के मोतियों से भविष्य के लिए एक सुंदर माला बनाना चाहते हैं. बीते समय को लौटा लाने की चाहत की डोर से बंधे हैं हम दोनों. स्मृतियों के बसंत में कोई कोयल फिर से कूक रही है, अस्तित्व की अमराइयों में. वर्षों के पतझड़ के इस पार

रंग-बिरंगे फूल फिर से खिलने लगे हैं. दुःस्वप्नों के अंधेरे को चीर कर सूर्य की सुनहरी किरणें हम तक फिर से पहुंचने लगी हैं.

शायद तब हम स्वयं भी अपने-अपने दिलों की धड़कनों से पूरी तरह परिचित नहीं थे. तुम तब उन्नीस की थीं और मैं इक्कीस का. मुझे हैरानी है कि दस बरस का लंबा अंतराल भी स्मृति की स्लेट से उस शाम की छवि को पोंछ नहीं पाया जो हमारी यादों की डाल से अटकी किसी पतंग-सी रह-रह कर फड़फड़ाती रही. वह शाम....कितनी खामोश और मासूम-सी थी. तुम थीं, मैं था और तनहाई थी. कुछ इच्छाओं के फड़फड़ाते पंख थे. कुछ उम्मीदों के इंद्रधनुषी सपने थे. कुछ अस्पष्ट-सी छवियां थीं. कुछ निःशब्द से स्वर थे. खिड़की के बाहर पूर्णिमा का गोल चांद निकल आया था. चुप्पी का संगीत चारों ओर बज रहा था. तुम्हारे माथे पर ठंडे पानी की पट्टियां बदलते हुए मुझे तुम इतनी अपनी-अपनी-सी क्यों लगी थीं? तुम से मेरा

कौन-सा अनाम नाता था? लाइब्रेरी में जब तक मैंने वह किताब ढूँढ़ कर तुम्हें दे नहीं दी थी, तब तक मुझे चैन क्यों नहीं आया था? तुम्हारी मुस्कान मेरे भीतर जलतरंग-सी क्यों बजने लगती थी? क्या तुम्हारे मन में भी मेरे लिए कुछ था?

उस शाम तुम मेरे कितने करीब थीं. तुमने काली जीन्स पर लाल स्वेट-शर्ट पहन रखा था. हालांकि तेज बुखार की वजह से तुम्हारा फूल-सा चेहरा मुरझा गया था. मैं जिस पंखुरी को जानता था, वह कुम्हलायी हुई थी. खिड़की से चांदनी का एक टुकड़ा आ कर तुम्हारी गोद में बैठ गया था. और मुझे हाल ही में लिखी हुई अपनी एक कविता याद आ गयी थी - 'तुम जैसे' : 'ओ प्रिये/ तुम जैसे/एक उन्मत्त/युवा भंवर/तुम जैसे/सप्तम स्वर में बजता/एक पियानो/तुम जैसे/एक ऋचा/आकाश तक जाती हुई/तुम जैसे/फ़ौलाद और चाशनी की एक डोरी/ मुझसे बंधी हुई/तुम में आबाद है/प्रेम की अनगिनत अनुगूंजें/जो बसंत करता है/फूलों के साथ/वह करना चाहता हूँ/मैं तुम्हारे साथ/ओ प्रिये....'

मैं तुम्हें प्यार से छूना चाहता था. लेकिन जब मैंने बुखार जांचने के लिए तुम्हारा माथा छुआ तो चौंक गया उस तपिश से. तुम्हारे माथे पर ठंडे पानी की पट्टियां बदलते हुए मैंने क्यों ऐसा चाहा कि तुम्हें अपने सीने में भींच लूं. तुम्हारे चेहरे पर एक उदास मुस्कान थी. तुमने अपनी अक्षत कुंवारी आंखों से मुझे देखा और आंखें मूंद ली थीं. तुम्हें अब आराम आ रहा है, यह विचार मुझे क्यों खुशी दे रहा था? क्या तुम मेरी उत्तेजना को, तुम्हारे स्पर्श की वजह से सुलगती हुई मेरी देह की आंच को भांप सकी थीं? वह क्या चीज़ थी जिसने तुम्हें मुझ पर इतना भरोसा करने दिया था?

क्या तुम्हें पता है कि जब तुमने आंखें मूंदी हुई थीं, मेरे अधीर अधर तुम्हारे होंठ चूमने के लिए तुम पर झुक आये थे? वह कौन-सा अहसास था जिसने मुझे बीच में ही रोक लिया था? क्या वह हमारे बीच मौजूद जातियों की दीवार थी? या वह प्यार को खो देने का भय था? या अपने प्रति तुम्हारे विश्वास को नहीं तोड़ने की अदम्य इच्छा थी? तुम्हें मुंदी आंखों वाले प्रदेश में अकेला छोड़ कर मैं चुपचाप वहां से चला आया था....तुम्हारी चितकबरी याद हृदय में समेटे. अपना उदास अकेलापन अपने कंधों

पर लिये.

मैं उस शाम के गाल पर ढुलक गयी आंसू की बूंद था. मैं सप्तम स्वर से पहले ही टूट गयी वीणा की तार का अधूरा संगीत था. हम रेल की उन दो समानांतर पटरियों-से थे जो कभी नहीं मिल पाये थे. हमारी अधूरी कथा घनी झाड़ी में खो गयी उस गेंद-सी थी जो दोबारा नहीं मिली थी. मेरी रात का कोई दिन नहीं था. तुम्हारी शबरी के कोई राम नहीं थे. दोनों की आंखों में केवल जलते हुए आंसू थे. वह शाम एक अनसुलझी उलझन-सी हमारे बीच हमेशा मौजूद रही.

हालांकि रेत-से फिसल जाते हैं जीवन के सभी पल हमारी मुट्ठी में से, लेकिन वह शाम ज़रूर अटकी रही होगी हमारे अवचेतन के किसी दरख्त से. तभी तो कल जब दस बरस बाद तुमसे अचानक दोबारा मुलाकात हुई तो भूरी पड़ गयी स्मृतियों की टहनी फिर से हरी हो गयी. तुम्हें देखते ही मेरी धमनियों में फिर से उत्तेजना क्यों भरने लगी थी? क्या यह कोई दैवी इशारा था कि जो लिखा है, वह हो कर रहेगा? तभी तो बरसों से रुकी हुई एक कहानी फिर से चल निकली थी पूरी होने के लिए....

## सुमी

**क्या** यही नियति है. दस बरस बाद मेरा अहमदाबाद आना. कॉन्फ़ेंस में तुमसे अचानक मुलाकात हो जाना. समय की राख के ढेर में दबी चाहत की चिंगारियों का फिर से शोला बन जाना. हमारी खामोशी में इच्छाओं के कितने पंछी पंख फड़फड़ाने लगे थे. हमारी आंखों में से कितनी अभिलाषाएं झांक रही थीं.

उस शाम की तरह ही कल एक और ऐतिहासिक शाम थी. कॉन्फ़ेंस के बाद तुम मुझे अपने घर ले गये.

'बाक़ी लोग कहां हैं? तुम्हारी पत्नी? बच्चे?' ड्राइंग-रूम में बैठते हुए मैंने पूछा.

'सुमी, मैंने शादी नहीं की.'

'क्यों?'

तुम चुप थे किंतु तुम्हारी बोलती आंखें सब कुछ बयां कर रही थीं.

'और तुम? तुम्हारे पति क्या करते हैं? कितने बच्चे हैं?'

'मनु, मैंने भी शादी नहीं की...'

मनु

....तो इतने सालों तक वही दर्द हम दोनों को सालता रहा था. हम चुप थे. और अचानक दस बरस पहले की वह शाम समय की केंचुली उतार कर हमारे बीच दोबारा आ बैठी. चमकती हुई. मेरा दिल तेज़ी से धड़क रहा था. मेरी नसों में रक्त का प्रवाह बढ़ गया था. और फिर बरसों से जमे हुए शब्द पिघल कर बहने लगे.

तुम्हारी हथेली अपनी हथेलियों में थाम कर मैंने कहा — ‘सुमी, यह शाम साक्षी है कि मैं तुमसे प्यार करता हूँ. जब से तुम्हें देखा था, तभी से तुमसे प्यार करता था.’

धीमी लेकिन मजबूत आवाज़ में तुमने कहा — ‘मनु, वह शाम साक्षी थी कि मैं भी तुम से प्यार करती हूँ. बहुत पहले से. उस शाम जब मेरे होंठ चूमने के लिए तुम मुझ पर झुक आये थे, उससे भी पहले से.’

‘तुम उस शाम जगी हुई थीं?’ मैंने थोड़ा झंपते हुए पूछा.

‘जगी तो आज हूँ मैं बरसों की गहरी नींद के बाद.’ तुम फुसफुसायी थी.

फिर तुम एक इंद्रधनुषी हंसी हंसी थीं. तुम्हारी आंखों में एक चमक थी. उस चमक में एक आमंत्रण था. वह आमंत्रण मुझमें इच्छाएं जगा रहा था. जैसे कामना के चटख रंगों से भरी अतीत की वह शाम फिर से जवां हो गयी थी...मुझे क्या पता था कि यह रतजगा, यह दीवानगी इतनी मीठी होगी....

...जब मुझे होश आया तो सभी बांध टूट चुके थे. मांसल सुख मेरी मुट्टी में था. बरसों से सूखी हमारी देह की मिट्टी तृप्त हो रही थी. हमारे होठ परस्पर चुंबन में जुड़े थे. हमारी देह गाढ़े आलिंगन में बंधी थी. तुम्हारे भीतर से केवड़े और खस जैसी खुशबुएं फूट रही थीं. मैं तुम्हारे कान की लवों को बेतहाशा चूम रहा था. तुम्हारे हाथ मेरे छाती के बालों को नया अर्थ दे रहे थे. तुम्हारी सुगंधित सांसों के शोर ने इस शाम में बेइंतहा मस्ती घोल दी थी. तुम्हारी देह अब भी खजुराहो की नर्तकियों-सी कंटीली थी. अंगीठी की तेज़ आंच-सी तपती मेरी देह के सभी रंध्र खुल रहे थे. एक सुखद खुमार मुझ पर छाता जा रहा था. मेरी प्रेयसी मेरी बांहों में थी. मेरी जीभ तुम्हारी गहरी नाभि के भंवर में खो जाने को बेताब थी. मेरी उंगलियों के पोर-पोर तुम्हारी देह



के उतार-चढ़ावों को ब्रेल लिपि-सा पढ़ने को आतुर थे. मैं गेंहुआं शंखों-से तुम्हारे उत्सुक उरोजों और तुम्हारे जामुनी कुचाग्रों में खुद को खोता जा रहा था. तुम्हारी कमर का भूरा तिल मुझे मदहोश कर रहा था. अधमंदा आंखों से अब मैं प्रेम के अश्व की सवारी कर रहा था. कामुकता की पराकाष्ठा में तुम बुदबुदा रही थीं...

‘होल्ड मी टाइट मनु, टेक मी, किल मी...’ हम दोनों एक ऐसी प्यास की गिरफ्त में थे जो पीने के बाद भी निरंतर बढ़ती जा रही थी. एक-दूसरे के आगोश में हमारी देह एक लय में आगे-पीछे तैर रही थी, उड़ रही थी, झूम रही थी.

‘मनु, यू आर जस्ट ग्रेट....’ मेरे कानों में तुम्हारी कामुक आवाज़ गूंज रही थी. मेरी धमनियों में रक्त के उफ़ान का हरहराता शोर था. फिर आल्हाद का ऊष्म, मीठा फव्वारा फूट पड़ा और हम दोनों उस नैसर्गिक सुख में बह गये...

सुमी

आप सभी पाठकों को यह बताते हुए हमें हार्दिक प्रसन्नता हो रही है कि मैंने और मनु ने अपने-अपने परिवारों व रिश्तेदारों के विरोध के बावजूद परिणय-सूत्र में बंध जाने का फैसला किया है. कोर्ट-मैरेज होगी. आप सभी सुधी पाठकों का स्नेह और शुभकामनाएं अपेक्षित हैं.

द्वारा श्री एच. बी. सिन्हा

५१७४, श्यामलाल बिल्डिंग,

बंसत रोड, पहाड़गांज, नयी दिल्ली-११००५५

मो.- ९८६८५१२८२, ९८६८९५४९९,

ई-मेल : sushant1968@gmail.com

## मधु प्रसाद के दो गीत

### नूतन आवर्तन है!

बहुत दिनों के बाद आज फिर  
कुछ गाने का मन है।

कोयल, मोर, पपीहे, भंवरे  
उपवन में गाते हैं।  
पुरवाई की पाती पढ़ कर  
झूम-झूम जाते हैं।  
कली-कली पर अब ज्योत्स्नवर  
हो जाने का क्षण है।

हंस-हंस कर खुशियां द्यारे पर  
जब से खड़ी हुई हैं,  
सपनीली आंखों की तब से  
रातें बड़ी हुई हैं।  
पलकों पर लेटी किंदिया ही  
मानो खोया धन है।

संझबाती की यादें लेकर  
रजनी गहराती है।  
चंदा के साथी तारों को  
घर में ठहराती है।  
कोहरे में भी हो रहा  
सांसों का नर्तन है।

हरियाली की मीठी यादें  
लेकर सावन आया।  
झूला झूल रहे गीतों की  
पल में बदली काया।  
ईश्वर जाने किस कारण से  
जोग छेड़ता तन है।

ऋतु बदली है औ' बदला है  
निशा दिवस का फेर।  
पावन साथ मिला प्रियतम का  
अंतर हुआ सवेरा।  
संकेतों की भाषा बदली  
नूतन आवर्तन है।

### सिसकी सिसकी रातें

पीड़ा ने ही लिख डाला है  
मेरा लेखा-जोखा।

कदम-कदम पर नागफनी है  
औ' बबूल के कांटे।  
रेतीले मैदानों के संग  
कब तक मन को बांटे।  
जीवन तो लगता है जैसे  
बिन तीली का खोखा।

चंचल संवादों से हृदय  
अब बचता फिरता है।  
आंखों में जाने कब से इक  
टूटा क्षण तिरता है।  
भाव्य कहां तक झूठ बुलाये  
नहीं यहां कुछ चोखा।

गहराई से सोच रहा  
पल, हर पल की बातें।  
अनुबंधों का मेला था, या  
रंग भरी बायातें!  
जिस जिस पर विश्वास किया है  
उससे पाया धोखा।

उमर बराबर बीत रही है  
फूलों की, उपवन की।  
और न कोई आहट मिलती  
रसवंती उपवन की।  
पूछ रही हैं घर आशाएं  
खुलता नहीं झरोखा।

आंसू आंसू दिन हैं मेरे  
सिसकी-सिसकी रातें।  
ऋतुएं देखो दुश्मन जैसी  
करती हैं आघातें।  
कौन कहेगा मुझसे गोरी  
तेरा रूप अनोखा!

२९, गोकुल धाम सोसायटी, कलोल-महसाणा राजपथ, चांदखेड़ा, अहमदाबाद-३८२४२४

मो. : ७९२३२९०८४९



## कहानी

## अंतराल

✍ डॉ. स्वाति तिवारी

**धू**प लगातार तेज हो रही थी. लू ऐसी चल रही थी, मानो धूल का गुबार उड़ाकर मनुष्य का मज़ाक़ उड़ाना चाहती हो! शायद वह चुनौती दे रही थी कि मगना देखती हूँ, तू तेज़ चलता है या मैं? पर बेचारा मगना कहां तेज़ चल पा रहा था! चलना तो चाहता था, पंख होते तो उड़कर और अकेला होता तो भागकर या बस के पीछे लगेज की सीढ़ियों पर लटककर कैसे भी अस्पताल पहुंच जाता. उंगली पकड़ा हुआ बच्चा और पीछे गठरी जैसा पेट लिये, कमर पर से खिसकते मरियल दुधमुँहे बच्चे को संभालती लाजो चल रही है. बीमार, दर्द से कराहती, लाजो को साथ लेकर तो उसे धीरे-धीरे चलना पड़ेगा न! वह सोचने लगता है, 'लाजो को साथ लेकर तो वह जीवन भर चलना चाहता है, पर इस बार जाने क्यों, उसका मन शंकित है.'

उसे लग रहा है, 'लाजो उसका साथ ज़्यादा दिन तक नहीं दे पायेगी.' ऐसा विचार आते ही उसका चलना कठिन हो जाता है. मगना सिर को झटका देता है, जैसे झटकने से बात दिमाग़ से निकल ही जायेगी.

छः कोस दूर, डॉक्टरनी शहर में रहती है. गांव के दवाख़ाने पर चार महीने से ताला पड़ा है. लाजो बतावे थी, 'डॉक्टरनी का तबादला होई गवा है. और नरस बाई छुट्टी चली गयी है. सरकार कागज़ पे तो किन्तेई दवाख़ाने और स्कूल खोले है, पर ई सरकारी अस्पताल और स्कूल बस कागज़ पर ही चलत रही. डॉक्टरनी थी तो भी दवाई लेने शहर ही जाना पड़ता था, अब दोईन काम शहर में करत रहे.'

'रुको....कल्लू के बापू....मैं नहीं चलत सकूं, तनिक रुको...' मगना पीछे पलटकर देखता है, लाजो सड़क किनारे कमर पकड़े बैठ गयी है. बच्चे को उसने एक तरफ़ बैठा दिया है. मगना पलटकर दौड़ता हुआ आता है. एक नज़र ज़मीन पर पड़ी बीमार गर्भवती लाजो

पर डालता है तो दूसरी ज़मीन पर बैठे बच्चे पर. सूखे हाथ-पैर, पीला पड़ता रंग और निकला हुआ पेट. डॉक्टर साब कहते हैं, जाने क्या, लीवर का रोग है. ऑपरेशन करवाना पड़ेगा. इधर लाजो फिर पेट से है. डॉक्टर कहता है, इसका भी ऑपरेशन करवाना पड़ेगा. तीसरा बच्चा जल्दी पेट में आ गया, जान का खतरा है. क्या करे मगना! उसे क्या मालूम था, बच्चों के चक्कर में उसकी फूल-सी नाज़ुक लाजवंती यूँ बीमार हो तड़प-तड़प दिन काटेगी. पर क्या करे, सब भाग्य का खेल है.

वह सरपट आती कार रोकने की कोशिश करता है, पर ऐसे उसके भाग्य कहां. सर्र-सर्र सरसराती कई गाड़ियां दनादन चली गयीं. 'कोई तो रुक जाओ....रे....मेरी लाजो मर जायेगी...गाड़ी रोको-रोको, रुको साब...साबजी गाड़ी रोक दो, मेरी औरत मर रही है, कोई मदद करो...उसको डॉक्टर के पास ले चलो...' मगना बदहवास-सा दौड़ता रहा गाड़ियां रुकवाने. कभी लाजो के पास आता... 'बस हिम्मत रख...थोड़ा टेम तो लगता है, अभी करता हूँ कुछ...' फिर भागता है...पर...कब तक....?

'चल लाजो, उठ मेरा हाथ पकड़, चलते हैं. पास ही में तो है डॉक्टरनी का दवाख़ाना.' पर दर्द से तड़पती लाजो खड़ी होने की कोशिश करके फिर ज़मीन पर लोटने लगती है. मगना फूट-फूटकर रोने लगता है, पर इस मगरूर शहरी जीवन में ग़रीब की पुकार सुनता कौन है! ग़रीब का रोना उसका पागलपन है और बीमारी से तड़पना नाटक समझा जाता है, पैसे मांगने का. अचानक एक तांगेवाला आकर रुकता है...ग़रीब पर दया तो ग़रीब को ही आती है.

'क्या हुआ इसे?' तांगेवाले ने पूछा.

'हुज़ूर, मां बननेवाली है, बहुत दरद है, डॉक्टर बोली, दरद उठे तो ले आना....ऑपरेशन करना पड़ेगा. पर छः कोस की दूरी, चार कोस हम ले आवे, अब नहीं चल सकत ई....'

१७ फरवरी १९६०, धार (म. प्र.),

सम. एससी, सल. सल. बी, सम. फ़िल., पीसच. डी.



**लेखन** : नयी पीढ़ी के कथाकारों में एक सशक्त हस्ताक्षर, कविता, लेख, रिपोर्ताज, यात्रा-संस्मरण, व्यंग्य, संपादन और फिल्म निर्माण में भी सक्रिय. अब तक एक दर्जन से अधिक पुस्तकों का प्रकाशन. 'ब्रह्म कमल-एक प्रेम कथा' उपन्यास प्रकाशनाधीन. देश की शीर्षस्थ पत्रिकाओं में कहानियों का निरंतर प्रकाशन. प्रमुख अंग्रेजी पत्रिका 'संडे इंडियन' ने २१वीं सदी की ११ महिला लेखिकाओं की सूची में सम्मिलित.

**प्रकाशन** : 'क्या मैंने गुनाह किया', 'छः-जमा तीन', 'मुड़ती है यूँ ज़िंदगी', 'ज़मीन अपनी-अपनी', 'विश्वास टूटा तो टूटा, 'मैं' हारी नहीं',

'बैंगनी फूलों वाला पेड़', 'हथेली पर उकेरी कहानियाँ', (सभी कहानी संग्रह), वृद्धावस्था के मनोवैज्ञानिक विश्लेषण पर केंद्रित दस्तावेज 'अकेले होते लोग' और महिलाओं के कानून से संबंधित महत्वपूर्ण पुस्तक 'मैं औरत हूँ मेरी कौन सुनेगा', स्तंभ लेखन : 'हमारे आसपास' (दैनिक भास्कर), 'महिलाएं और कानून' (दैनिक फ्री प्रेस, अंग्रेजी), 'आखिरी बात (चौथा संसार)', 'आठवाँ कॉलम एवं अपनी बात' (चेतना).

**पुरस्कार** : अनेक प्रतिष्ठित पुरस्कारों से सम्मानित. हाल ही में 'स्वाति तिवारी की चुनिंदा कहानियाँ' के लिए मध्य प्रदेश हिंदी साहित्य सम्मेलन द्वारा वागीश्वरी सम्मान से अलंकृत.

**विशेष** : कलागुरु विष्णु चिंचालकर पर निर्मित फिल्म का पटकथा-लेखन. संपादन और सूत्रधार. इंदौर स्थित परिवार परामर्श केंद्रों पर आधारित लघु फिल्म 'घरौंदा न टूटे' का निर्माण, संपादन व स्वर.

**संप्रति** : मध्य प्रदेश शासन के मुखपत्र 'मध्य प्रदेश संदेश' की सहयोगी संपादक.

'चल उठा तांगे में डाल, ले चलते हैं.'

'हां हज़ूर, बस अभी डालते हैं.' मगना लाजो को उठाने की कोशिश करता है, 'देख, हम बोले थे ना, भगवान बड़ा दयालु है.' तांगेवाला उसके बच्चों को उठाकर तांगे में बैठा लेता है. ...मगना से लाजो की पीड़ा देखी नहीं जा रही थी. बांटने जैसा दुःख होता तो मगना कब का अकेला ही सारा ले लेता, पर...प्रसव की पीड़ा तो लाजो को अकेले ही झेलनी थी.

डॉक्टरनी के पते पर तांगा रुकता है तो मगना राहत की सांस लेता है, 'देख लाजो, अस्पताल आई गवा. अब चिंता की कौनो बात नाहीं है...सब ठीक हो जायेगा.'

'भगवान बड़ा दयालु है...लाजो...'

तांगेवाला पता लगाता है, डॉक्टरनी साहेबा हैं या नहीं. पता लगा, नहीं हैं. पेशेंट देखने गयी हैं. तांगेवाला

उससे किराया भी नहीं लेता, चला जाता है. मगना उसे दुआ देता है. दरवाज़े पर लंबी लाइन लगी है. बीमार महिलाओं और बच्चों की. आदमी भी खड़े हैं, साथ में आये होंगे. सोचता है, डॉक्टरनी के आते ही पहले वह लाजो को बता देगा. सबसे ज़्यादा तो उसे ही तकलीफ़ है. पसीने से तर होती अपनी क्रमीज़ उतारता है वह और छाती से गंगा-जमना की तरह धारबंद बहते पसीने की लकीरें देखने लगता है. नर्स आकर चिल्लाती है, 'ये क्या तमाशा है, कपड़े पहनो, इतनी औरतों के सामने.'

पर मगना बिना बहस किये पसीने से तर क्रमीज़ फिर पहन लेता है. ऊपर देखता है, शायद बादल का कोई टुकड़ा बदली बन बरस जाये. जून की तपती दोपहर से कुछ तो राहत हो. डॉक्टर के दरवाज़े पर लाइन लंबी होती चली गयी. लाजो को उसने लाइन में ही लिटा दिया था,

जनाना वार्ड की डॉक्टर है।

यहां पेशेंट को ही लाइन में लगना होता है, लाजो में लाइन में खड़ी रहने या बैठने की ताकत ही कहां थी। लाइन में थोड़ी हलचल होती है। डॉक्टरनी साहेब आ गयी हैं, वह दरवाजे पर देखता है। बड़ी-सी सफ़ेद कार में बैठकर डॉक्टरनी आयी थीं। उतरीं तो मगना की तरह कुछ और लोग लपके, पहले देखने की विनती करने, पर कुछ फ़ायदा नहीं। आंखों पर काला चश्मा लगाये परियों सी सुंदर उस डॉक्टरनी ने 'नो...नो लाइन से आइए. लाइन से भेजना सिस्टर.' कहकर क्लीनिक के केबिन में प्रवेश कर लिया था. मगना अपमानित-सा महसूस करता है, पर ग़रीब का क्या मान, क्या अपमान? डॉक्टरनी लाजो को ठीक कर दे, बस. वह तो सारी उमर डॉक्टरनी की गुलामी कर लेगा.

बड़ी डॉक्टरनी है. उसका नाम बहुत है. वह पास खड़े बीड़ी फूंक रहे आदमी से पूछता है, 'हां भैया, डॉक्टर तो होशियार सुनी है.'

'अपनी नैया पार लगावे तो बात है', वह मन-ही-मन बुदबुदाता है.

फिर सामने की तरफ़ देखता है. चार-पाच पेशेंट निपट चुके थे. उसे अहसास होता है, लाजो को प्यास लगी होगी. भाग-दौड़ में वह भूल ही गया. झट से पोटली खोलता है. पीतल का गिलास निकालता है. टंकी से पानी का गिलास भरकर लाता है, तो बच्चे टुकर-टुकर देखते हैं. पहले वह बच्चों को पानी पिलाता है, फिर खुद पानी हलक में उड़ेलता है, तो अंतड़ियों में ठंडा पानी राहत देता है. गिलास भरकर लाजो को देता है, पर उसमें उठने की ताकत भी नहीं बची है. वह अपनी बांह पर लाजो की गर्दन को उठाता है, दो-चार घूंट पानी लाजो गुटकती है, फिर पोटली का तकिया लगा मगना उसे लिटा देता है.

दोपहर की धूप कलसाने लगती है. उसके आगे अभी चार पेशेंट और हैं. लाजो पर नज़र पड़ती है. वह कातर दृष्टि से मगना को ही ताक रही थी. पेट और कमर कसकर पकड़े थी. बच्चे भूख से कुलबुलाने लगे थे. पास ही टेलेवाला चना मुरमुरा बेच रहा था. वह जेब टटोलता है, पांच का नोट फिर हाथ में आ जाता है. वह दो रुपये का मुरमुरा लेकर लौट आता है. दोनों बच्चे पुड़ियां खोल

चुगने लगते हैं. सिस्टर की आवाज़ से मगना की तंद्रा भंग होती है. 'लाजवंती बाई' मगना लाजो के पास जा उठाने के लिए हाथ बढ़ाता है, 'चल उठ, आ गया नंबर, चल डॉक्टरनी साब...' वह उठाने की कोशिश करता है. सिस्टर फिर आवाज़ लगाती है, 'लाजवंती बाई' पर लाजो तो लुढ़क गयी, उसके हाथ में, 'डॉक्टर साहब देखो, जल्दी मेरी लाजो...' डॉक्टर शोर सुन बाहर आती है, 'अरे, यह तो मर गयी. तुमने पहले बताया था. यही तो ग़लती करते हो तुम गांववाले, चलो ले जाओ इसे.'

मगना का स्वर कातर हो सिसकियों में बदल जाता है. एक ख़ालीपन तीव्रता से भरता जाता है. अस्पताल आये थे तब दो थे. दोनों ही बच्चों को थामे थे पर अब तीन को थामकर छह कोस मगना कैसे ले जाये, वह एक-एक कर तीनों को दवाख़ाने के बाहर सड़क पर लाता है. पोटली से लाजो का लुगड़ा निकाल लाजवंती की लाश की लाज बचाने के लिए उढ़ा देता है.

तांगेवाला किसी राहगीर को छोड़ फिर उधर से गुज़रता है, एक अंतराल के बाद. तांगेवाले के जाने और आने के उस छोटे-से अंतराल के मध्य लाजो ने लंबा अंतराल काटा था, जीवन और मृत्यु के बीच का. यह अंतराल अवधि में कितना ही छोटा या बड़ा क्यों न हो, यह घाव देता है, घाव को नासूर में बदल देता है. यह जीवन की अर्थहीनता पर हंसना या रोना सिखाता है. अमीर और ग़रीब के बीच का अंतराल ग़रीब की मज़बूरी को परत-दर परत उघाड़ देता है. उसे अपनी औकात का अहसास कराता है. बार-बार मगना ने डॉक्टर और ग़रीब पेशेंट के मध्य पसरे अंतराल को महसूस किया था. पहले १५० रुपये परामर्श शुल्क देने वाले बीमार देखे गये थे. पर्ची कटवानेवाले बाद में. और निःशुल्क परामर्शवालों की लंबी लाइन में लगी थी लाजो. प्रतीक्षा के उस अंतराल को पाटा था मृत्यु ने.

मगना फिर तांगे में लाजो को पटकता है.

'चलो भैया, हिम्मत रखो! छोटे-छोटे बच्चे हैं, ईश्वर बड़ा दयालु है, वही इन बच्चों को सबूरी देगा.' तांगेवाला उसे ढाढ़स देने लगता है.

✍ ई-एन १/९, चार इमली,

भोपाल-४६२०१६

मो. - ९४२४०११३३४



लघुकथा

## कमाई - खर्च

✍ सतीश दुबे

उन चारों पेन्टर यानी पुताई करने वालों में तीन पच्चीस से पैतीस वर्ष के थे और चौथा पचास या उससे दो-चार बरस कम ज़्यादा. उम्र दराज़ होने के कारण काम शुरू होने के पहले ही दिन से तीनों ने इन्हें कक्का की पदवी दे दी थी. रोज़ की तरह आज भी अपने अपने टिफ़िन के मालमत्ते को बांट-जूट कर खाने के बाद विश्राम करते हुए वे बतिया रहे थे. एक बोला, 'देख पेंटिंग करने से पहले दीवारों की घिसाई कर-कर के हथेली, थाली हो गयी.'

'सच कहूं, यह ईमानदारी हम्माली ठेकेदार के कहने पर करना पड़ रही है. उसका कहना है कि इन फ़्लैटों की बुकिंग बड़े पैकेज़ वालों की है इसलिए दीवार ऐसी चमकना चाहिए कि मैडम लोगों को बार-बार ड्रेसिंग-रूम में न जाना पड़े, जीतू तू बी. ए. पास है बता यह बड़ा पैकेज़ क्या होता है?'

'यानी तनखा में मिलने वाले इतने नोट कि अच्छा खाने-पीने, ऐश करने के बाद यह सोचना पड़े कि एक-के-दस करने के लिए खर्चा कैसे किया जाये? और एक हम जिनके सामने आमदनी का सिर एक और खर्च के सौ.'

और इसके बाद तीनों ने अपने खर्च का ब्यौरा देना शुरू किया. उनके खर्च के मद में दाल-रोटी व्यय के साथ मां-बाप की बीमारी-सीमारी को पहला दर्जा दिया गया था. जीतू का लक्ष्य जी-तोड़ मेहनत कर लड़की को बड़े पैकेज़ वाली मैडम बनाने का था, तो रमेश की यह इच्छा थी कि उसके नन्हें को दूध के साथ अच्छा पौष्टिक आहार मिले. शंकर के उदास स्वरो में यह पीड़ा थी कि बहुत चाहने पर भी वह औरत के लिए न तो गहने गांठने ला पाता है न कपड़े लते.

'जो आधी कमाई दारू में खत्म...'

जीतू इतना बोला ही था कि शंकर तैश में आकर गिरेबान पकड़ने की मुद्रा में उसकी ओर लपका - 'फिर से बोल तो क्या बोला... मच्छर की औलाद, बिना जाने-समझे कुछ भी बोला ना तो...'

'अरे पूरी बात तो सुनी ही नहीं तैने. मैं कह रहा था आधी कमाई दारू में खत्म करने वालों के साथ ऐसा होता है, तू तो इन धंधो में है नहीं. मुझे मालूम है तैने एक बार कहा था, हम सरीखे लोगों का दारू पीना घर का निवाला या बच्चे के मुंह का दूध छीनना है. वे हरामखोर हैं जो ऐसा करते हैं....'

इसी चर्चा चुहूल के बीच अचानक किसी के रोने की आवाज़ ने तीनों को चौंका दिया. देखा कुछ ही दूरी पर घुटने के बल बैठे, दायें हाथ पर नीचा माथा किये कक्का फफक रहे हैं. हक्के-बक्के से सत्र, तीनों तेज़ी से उन तक पहुंचे. तथा घबराकर बोले — 'कक्का ये एकदम क्या हुआ?'

जैसे-तैसे संयत करने पर हिचकोले के साथ वे फुसफुसाये — 'मैं बरसों से घर के लोगों का निवाला, औरत का सुख और अपने ही बच्चों के मुंह का दूध छीनने वाला हरामखोर हूं. ....हे भगवान मैं अब तक मर क्यों नहीं गया.' बमुश्किल इतना कहकर कक्का फिर बुक्का फाड़कर रो पड़े. आश्चर्यचकित तीनों उन्हें शांत करने के लिए आसपास बैठकर आंखों की भाषा में एक दूसरे से कहने लगे — 'क्या मालूम था कि हमारी आपसी बातों से कक्का का अंदर का मन उबाल खाकर ऐसे बाहर आ जायेगा.'

✉ ७६६, सुदामानगर, इंदौर - ४५२००९

मो. - ९६१७५९७२११

कहानी

अपना-अपना सुख

✍ मंजुश्री

**ए** सी.का डिब्बा गाड़ी के एकदम अंत में लगता है. पूरा प्लेटफॉर्म तय करना पड़ता है. घर से निकलते-निकलते थोड़ा समय हो गया था. कार पार्क करके कुली ढूँढ़ने में भी समय लग गया. कुली के साथ सामान लेकर मनीषा प्लेटफॉर्म की तरफ चल पड़ी और राजेश प्लेटफॉर्म टिकट लेने के लिए चले गये. प्लेटफॉर्म क्या! पूरा मेला लगा हुआ. दोनों तरफ गाड़ियां लगी हुई थीं. न जाने कितना आदमी आता-जाता है रोज़, चारों तरफ गंदगी ही गंदगी. भीड़ में से रास्ता बनाते हुए डिब्बे तक पहुंची. एसी में भी भीड़ ही भीड़. कुली सामान के साथ घुसा और साथ ही वह भी डिब्बे में जैसे-तैसे घुस गयी, तभी राजेश भी हाथ में पानी की बोतल लेकर पहुंच गये.

डिब्बे में घुसते ही पहली सीट उसकी थी, वैसे भी उसे यह सीट बिल्कुल पसंद नहीं है, पूरे समय लोगों का आना-जाना लगा रहता है, पर क्या करती. दूसरे यात्रियों पर निगाह पड़ी तो देखा सामने की सीट पर एक स्वामी जी विराजमान हैं और उन स्वामीजी को छोड़ने आये लोगों का जमावड़ा इतना ज़्यादा था कि कुली को सामान लगाना भी मुश्किल हो रहा था. किसी तरह सामान लगाया, कुली को पैसे थमाये और पसीना पोंछकर मनीषा सीट पर बैठ गयी.

स्वामीजी के पैर छूने वाले लोगों का तांता लगा हुआ था, जो आता कम से कम एक मिनट तक स्वामी जी के पांवों पर माथा टिका कर आशीर्वाद पा रहा था. औरतें भी यही कर रही थीं. कोई डिब्बे से उतरने को तैयार न था मानों गाड़ी चली और सारा पुण्य प्रताप भी चला जायेगा. उनको छोड़ने आये हुए लोगों के अलावा डिब्बे में सफ़र कर रहे यात्रियों की भी श्रद्धा उमड़ी पड़ रही थी. डिब्बे में चढ़ने वाला हर यात्री स्वामीजी के पैर छूकर आगे बढ़ रहा था. एक महिला यात्री अपने एक साल के बेटे को लिये हुए स्वामी जी के पैरों पर पड़ी थी. बच्चा बीमार दिखाई पड़ रहा था. दुबला-पतला मरियल सा, रिरियाता

हुआ. स्वामी जी के हाथ लगाते ही वह धन्य हो गयी. मजमा-सा लगा था. सामान लिये यात्रियों का आगे बढ़ना दूभर था. इतना शोर और पसीने की दुर्गंध!

मनीषा और राजेश यह मंजर देख रहे थे, तभी गाड़ी छूटने का संकेत हुआ और राजेश उतर गये. बाक़ी लोग भी स्वामी जी के पैर दोबारा छूकर उतरने के प्रयास में जुट गये. गाड़ी चली तो मनीषा ने सांस ली और ठीक से डिब्बे का मुआयना करने लगी. उसकी सीट नीचे की थी. ऊपर की दोनों और साइड की दोनों सीटें भी स्वामीजी के चेलों की थीं. मनीषा का दिल बैठ गया. चौबीस घंटों का सफ़र है, और वह अकेली यात्रा कर रही है. रोज़ ही अख़बार में तमाम ढोंगी साधु-सन्यासियों के बारे में ख़बरें छपती हैं, कहीं कुछ ऐसा वैसा हुआ तो !.....क्या करेगी वह? अब तो जो होगा देखा जायेगा. गाड़ी भी चल पड़ी है...सोच रही थी वह.

भीड़ छंटते ही स्वामी जी भी जरा सामान्य हुए. मनीषा ने देखा सीट पर उनका अपना होल्डॉल बिछा है जिस पर लाल प्रिंटेड रेशम की एक चादर बिछी हुई थी. पालथी मार कर बैठे हुए स्वामी जी लगभग ६४-६५ वर्ष के हष्ट-पुष्ट थे. चेहरा भी चमक रहा था. सफ़ेद धोती कुर्ता पहने हुए थे. सभी सीटों के नीचे उनका सामान अटा हुआ था. ऊपर की एक सीट पर कुछ बैग भी रखे थे. मनीषा की तो मात्र एक अटैची और एक छोटा बैग ही था. सामने वाली सीट के नीचे मनीषा की दृष्टि पड़ी तो देखा पीतल का एक पीकदान, पीतल का ही वाशबेसिन और एक कमंडल रखा था. देखकर थोड़ी घिन हो आयी. पूरे रास्ते खांसते खंखारते जायेंगे यह महाशय. बड़ी कोफ़्त हो रही थी, फिर देखा कि पीकदान और वाशबेसिन साफ़-सुथरे थे...पर फिर भी....साढ़े-ग्यारह बजे गाड़ी रवाना हुई और थोड़ी देर बाद स्वामी जी ने आवाज़ दी.

‘पिटू...’

‘जी.....’ साइड की सीट पर बैठे चेलों में से गेरुए कपड़े पहने एक लड़के ने तुरंत जवाब दिया. एक चेला





६ जनवरी १९४९, उरई (उ. प्र.)  
सम. स. (अर्थशास्त्र व हिंदी), बी. सड.

**प्रकाशन** : साहित्य, सबरंग (मुंबई) व कुछ अन्य पत्रिकाओं में कहानियां प्रकाशित, कथाबिंब, ऋतुचक्र, पूर्वा, आघात, अपूर्वा, अर्पण, दैनिक कश्मीर टाइम्स आदि में कवितारं प्रकाशित.

आकाशवाणी से भी कविताओं का प्रसारण. विभिन्न पत्रिकाओं में लेख, साक्षात्कार व लघुकथारं भी प्रकाशित व पुरस्कृत, पल-प्रतिपल (जयपुर) से लघुकथा पुरस्कृत.

**संप्रति** : 'कथाबिंब' का संपादन.

ऊपर की सीट पर सोया था. स्वामीजी ने बैठे ही बैठे हाथ ऊपर किये और पिंटू ने उनका कुर्ता उतारा और तहा कर रख दिया, पैरों में से मोजे उतारकर दो मिनट पैर सहलाये और स्वामीजी 'हरि ओम' कहकर आराम से बैठ गये. पिंटू फिर अपनी सीट पर चला गया.

मनीषा ने देखा कि स्वामी जी ने पतला सा सफ़ेद डिजाइनर ऊनी स्वेटर पहन रखा था. वैसे तो टंड नहीं थी, पर शायद एसी की वजह से पहना हो. गाड़ी तेज़ रफ़्तार से दौड़ रही थी और डिब्बे में बैठे बाक़ी यात्री भी सामान्य होकर गपशप में व्यस्त हो चले थे. बीच-बीच में उस मरियल बच्चे की रोने की आवाज़ आ रही थी, कोई गाने सुन रहा था, दूसरी तरफ़ की साइड वाली सीट पर बैठा जोड़ा हंस-हंस कर बतिया रहा था.

स्वामी जी के सामने वाली सीट पर बैठी मनीषा ही सामान्य नहीं थी. वैसे तो बैठी थी पर स्वामी जी की उपस्थिति उसे सामान्य नहीं होने दे रही थी. मन में उथल-पुथल मची थी. समझा रही थी अपने मन को...क्या हुआ....अगर ये स्वामी जी यहां बैठे हैं! वैसे भी वह तो अकेली सफ़र कर रही है — बाक़ी सीटों पर कोई न कोई तो आता ही. खिड़की से बाहर देख रही थी...पर सहज नहीं हो पा रही थी.

'पिंटू.... ज़रा वहां जायेंगे....' स्वामी जी ने आवाज़ दी और बाथरूम की तरफ़ इशारा किया.

पिंटू दौड़कर आया और अख़बार लेकर बाथरूम में घुस गया. लौट कर आया और स्वामीजी को सहारा देकर बाथरूम ले गया, वैसे सहारा देने जैसी कोई बात नहीं थी.

पूरे स्वस्थ थे स्वामी जी! जब तक स्वामी जी बाहर नहीं आये पिंटू बाथरूम के बाहर ही खड़ा रहा. हाथ धुलवाकर स्वामी जी को लाया और फिर अपनी जगह बैठ गया. बाक़ी दोनों चले बैठे ही रहे.

उसी समय टी. टी. महोदय आये. आते ही स्वामीजी के पैर छुये और मेरी सीट पर बैठ गये. सामने की सीट पर तो होल्डॉल बिछा था. टिकट चैक करते हुए स्वामी जी के हाल चाल पूछे जा रहा था....आराम से बैठिए.... कोई तकलीफ़ हो तो मुझे बताइएगा. मैं खंडवा तक चल रहा हूं. आश्वस्त करके चला गया. लगभग साढ़े बारह बज रहा था.

'पिंटू.....' स्वामी जी ने आवाज़ लगायी. बाक़ी तीनों चले भी सचेत हो गये.

'जी....' पिंटू उठकर उनके पास आया.

'भोजन ग्रहण करेंगे....' स्वामी जी ने आदेश दिया.

देखते-देखते पिंटू ने होल्डॉल पर सफ़ेद तौलिया बिछाकर पीतल का वाश बेसिन रख दिया और कमंडल से स्वामी जी के हाथ धुलाकर दूसरा तौलिया दिया. तुरंत दूसरा चेला वाश बेसिन साफ़ करके पोंछ कर नीचे रख गया.

मनीषा सोच रही थी, हैं तो स्वामी जी पर — कितना ताम-झाम...! सादा जीवन उच्च विचार वाली कहावत कहीं नहीं थी. पिंटू ने तुरंत नीचे से प्लास्टिक की एक टोकरी निकाली. उसमें रखे सामान को देखकर मनीषा चकित रह गयी. इतना सारा सामान और सब बहुत सलीके से प्लास्टिक के डिब्बों में रखा हुआ था. पिंटू ने तुरंत एक

स्टील का डिब्बा निकाला और एक कटोरी में दही निकालकर स्वामी जी को दिया. एक-एक करके तीन कटोरी दही स्वामी जी ने पिया. उसके बाद उसने थाली में पूड़ी-कचौड़ी, भरे परवल, आलू की सब्जी, आचार, पापड़ रखे. वह एक के बाद एक डिब्बे खोल रहा था. मनीषा खिड़की से बाहर देखते हुए भी कनखियों से देख रही थी और मन ही मन अपने खाने के बारे में सोच रही थी. वह रोटी, सब्जी और अचार लेकर चली थी. अकेली भी थी और एक दिन अगर पूरा खाना न खाया तो क्या....? सफ़र में इतना ताम-झाम उसे अच्छा नहीं लगता. ज़्यादा खाकर बैठे ही तो रहना पड़ता है.

पिंटू लगातार खड़ा ही था और स्वामी जी के खाने पर नज़र रखे था. सब्जी पूड़ी खत्म होते ही फिर परोस रहा था. फिर उसने मेवे का एक लड्डू स्वामी जी को दिया. उन्होंने पानी पीकर 'हरिओम' बोलकर ज़ोरदार डकार ली. तुरंत दूसरे चले ने थाली उठायी और बाथरूम से धोकर ले आया.

पिंटू ने एक गिलास में थर्मस से गरम पानी निकाला और आधा नींबू निचोड़कर स्वामी जी को दिया. खाना समाप्त होते ही पिंटू ने तौलिये पर वाश बेसिन रखा और कमंडल से उनके हाथ धुलाने लगा. स्वामी जी ने अपने नकली दांत निकालकर धोये और एक स्टील की कटोरी में रख दिये. खूब खांस-खंखार कर मुंह में उंगली डाल-डालकर मुंह साफ़ किया — उन्हें डिब्बे में बैठे दूसरे किसी व्यक्ति की कोई परवाह नहीं थी पूरा दृश्य देखने लायक था. मनीषा मन ही मन गालियां दे रही थी. कहीं भी श्रद्धा नहीं उमड़ रही थी. स्वामी जी को कहीं उठकर जाने की आवश्यकता नहीं थी. पिंटू सेवा कर रहा था. स्वामी जी सेवा करवा रहे थे.

मनीषा पिंटू का सेवा भाव देखकर चकित थी. क्या सुख मिल रहा था उसे....कौन सुख दे रहा था...कौन सुख ले रहा था! खा-पीकर स्वामी जी आराम करने लगे और तब पिंटू और चले ने थाली, वाशबेसिन धो-पोंछकर सीट के नीचे रखा और फिर अपना खाना निकालकर खाने लगे. मनीषा ने भी चुपचाप अपना डिब्बा निकाल कर रोटी सब्जी खायी. फिर मुंह तक चादर तानकर सोने की कोशिश करने लगी. बड़ा अटपटा लग रहा था. एक चेला ऊपर की सीट पर खाना खा रहा था. उसमें सेवा

भाव थोड़ा कम दिख रहा था. अभी तक एक बार भी नीचे नहीं उतरा था.

साढ़े चार बजे के करीब स्वामी जी की आंख खुली 'पिंटू.....' उन्होंने आवाज़ दी.

हड़बड़ाकर पिंटू उठा...बाक्री चले भी सचेत हो गये, उठे नहीं लेटे ही रहे. स्वामी जी ने फिर बाथरूम जाने की इच्छा ज़ाहिर की. पिंटू फिर दौड़कर अखबार लिये बाथरूम गया और स्वामी जी को बाथरूम ले गया. हाथ धुलाये, फिर शाम के नाश्ते की तैयारी शुरू कर दी.

स्वामी जी पालथी मारकर बैठ गये. पिंटू थाली में छोटी-बड़ी एल्यूमीनियम फॉयल की पुड़ियाएं खोल कर कटोरी जैसी बना-बना कर रख रहा था, भुने चने, लाई, बादाम, अखरोट, पिस्ता, अंजीर...

ऐसा नाश्ता देखकर मनीषा भौंचक थी. स्वामी जी के चमकदार चेहरे का राज ज़ाहिर हो गया था. सफ़र में भी इतनी व्यवस्था.....

गाड़ी की रफ़्तार कुछ कम हुई. मनीषा ने देखा साढ़े छः बजे रहे हैं भुसावल आ गया है. कुछ लोग उतरे और कुछ लोग चढ़े. डिब्बे में चढ़ते ही एक बूढ़े से व्यक्ति ने स्वामी जी को देखते ही अपनी पत्नी को टहोका मारा — 'अग....पांव पड़....दिसत नहीं का....स्वामी जी बसले आहे...आशीर्वाद घे.' महिला की उम्र स्वामी जी की उम्र से आठ-दस साल ज़्यादा ही रही होगी. हांफ रही थी और मुश्किल से चल पा रही थी, जैसे-तैसे स्वामी जी के पांव छुये और आगे अपनी सीट की तरफ़ बढ़ गयी. उस बूढ़े व्यक्ति ने स्वामी जी के पांव छुये और माफ़ी मांगते हुए कहा 'तिची तबियत बरी नहीं...माफ़ करा....'

मनीषा लेटे-लेटे क़िताब पढ़ने की कोशिश कर रही थी. पता नहीं कब आंख लग गयी. झटके से आंखें खुली तो देखा स्वामी जी बैठे हैं और पिंटू उनके तलवों में तेल की मालिश कर रहा है. न कहीं आये, न गये और पैरों में दर्द हो रहा है. वाह...क्या ठाठ हैं....?

सात बजे के लगभग स्वामी जी ने फिर पिंटू को आवाज़ लगायी, 'पिंटू...ज़रा शौच जायेंगे.'

फिर पिंटू अखबार लेकर भागा और सहारा देकर स्वामी जी को बाथरूम ले गया. इस बार दूसरा चेला बाथरूम के बाहर खड़ा रहा और पिंटू स्वामी जी का सामान ठीक करने लगा.

मनीषा की उत्सुकता जागी और पिंटू से पूछा, 'तुम लोग कहां से आ रहे हो?'

'बंबई से — बोरिवली में किसी भक्त ने अपने घर पर स्वामी जी को बुलाया था. पंद्रह दिन रहे और अब झांसी किसी दूसरे भक्त के घर जा रहे हैं.' पिंटू बोला.

'पंद्रह दिन....? क्या किया वहां....?'

'कुछ नहीं...रोज सुबह शाम बहुत से भक्त इकट्ठे होते थे. प्रवचन होते थे. भजन कीर्तन...सब बहुत बढ़िया इंतजाम किया था...उस भक्त ने...' पिंटू ने बताया.

'स्वामीजी का आश्रम कहां है?'

'बनारस में.'

'और क्या होता है आश्रम में... क्या कोई स्कूल... अनाथाश्रम भी है....!' मनीषा की उत्सुकता जागी.

'नहीं...अनाथाश्रम वगैरह नहीं है...छोटा सा पुस्तकालय है, मंदिर है...सुबह शाम भजन कीर्तन होते रहते हैं.' बताया उसने.

'तुम्हारा समय कैसे बीतता है...' मनीषा ने पूछा.

'बस स्वामी जी की सेवा करता हूँ...समय मिलता है तो कुछ पुस्तकें पढ़ लेता हूँ...' पिंटू बोला.

'क्या उम्र है तुम्हारी?'

'बाइस साल...'

'कहां के रहने वाले हो?'

'भोपाल के..'

'कब से स्वामी जी के साथ हो...कैसे इनके साथ जुड़ गये?' मनीषा पूछे जा रही थी.

'लगभग पांच साल से....एक बार हमारे घर आये थे स्वामीजी तबसे मैं इनके साथ ही हूँ.'

'कभी अपने घर वापिस जाने का मन नहीं करता?'

'नहीं .....' अपने आप ही बोला..... 'काफ़ी बड़ा संयुक्त परिवार है हमारा.....बालू मिट्टी का व्यापार है...बस सब छोड़ दिया.'

'आगे क्यों नहीं पढ़ा...मां ने कुछ नहीं कहा...?'

'बहुत रोयी थी मां.....पढ़ाई भी बस बारहवीं तक की ...दो भाई हैं बड़े....बस ठान ली और निकल पड़ा....' सिर नीचे किये हुए पिंटू बोले जा रहा था.

'और ये दोनों....?' मनीषा ने नीचे की सीट पर बैठे दोनों चेलों की ओर इशारा किया.

'ये अभी पिछले साल ही आये हैं...इलाहाबाद से....'

'तुम लोग इतना सामान लेकर चलते हो!' मनीषा ने सामान की ओर इशारा करते हुए कहा.

'ये तो कुछ नहीं है. जब हम लोग अपनी गाड़ी से चलते हैं तब होता है सामान....'

'मतलब....?'

तीन-चार बड़ी-बड़ी गाड़ियां चलती हैं साथ में और भी भक्त होते हैं. स्वामी जी की सुविधा का सब सामान होता है....' पिंटू ने बताया.

'क्या इतना सब कुछ उनकी सुविधा का नहीं है?'

मनीषा चकित थी.

'नहीं...यह तो काम चलाऊ है.'

मनीषा वाशबेसिन, कमंडल, पीकदान, खाने की टोकरी और छोटे-बड़े तमाम बैग, अटैचियों को देख रही थी.

'काम चलाऊ? इतना सब...काम चलाऊ है? तुम्हें अच्छा लगता है सब....'

'हां बस सेवा कर रहा हूँ...सेवा करने की ठान ली है. सब त्याग दिया...' पिंटू बोला.

'पर वह तो किसी वृद्धाश्रम, अनाथाश्रम में रहकर भी हो सकती हैं.'

'तो यह क्या बुरी है...सेवा तो सेवा है.' पिंटू पलटकर बोला.

'हां....ठीक है पर स्वामी जी तो हृष्टपुष्ट हैं उन्हें सेवा की क्या ज़रूरत है.' मनीषा ने प्रश्न किया.

'मुझे तो सेवा का सुख मिल रहा है न!'

'सो तो है पर वह घर में मां-बाप की भी....'

तब तक स्वामी जी आ गये. पिंटू उठा उनके पांव पोंछे और होल्डॉल पर बिठा दिया और फिर से दोपहर की तरह शाम के भोजन का कार्यक्रम शुरू हुआ.

मनीषा सोच रही थी....स्वामी जी प्रवचन देते हैं, आशीर्वाद देते हैं पर सांसारिक सुखों और आत्मिक संतोष से परे नहीं हैं. जीवन का सही आनंद और सुख उठा रहे हैं, लोगों की अंधभक्ति का मज़ा ले रहे हैं.

उसे पिंटू की कही बातें याद आ रही थीं. 'दोनों ही कितने संतुष्ट हैं, एक सुख देने की तो दूसरा सुख पाने की चेष्टा में व्यस्त है.' कितना सापेक्ष शब्द है — सुख...कहां-कहां ढूंढता फिरता है मनुष्य... संबंधों और लाग-लपेट से परे सेवा का सुख कुछ और ही है... अपेक्षाओं से रहित.

साढ़े नौ बजे के करीब खंडवा आ गया.... गाड़ी लगभग समय पर ही थी. यहां पर दूसरे टी. टी. महोदय चढ़े. स्वामी जी को देखते ही निहाल हो गये. मानों सारे पाप धुल गये हों. बार-बार पांव पड़ने लगे. मैंने अपना टिकट दिखाया तो उन्होंने तुरंत मना कर दिया. सोचा होगा शायद स्वामी जी की चेली है. इतने में स्वामी जी ने भी टिकट निकाला...

टी. टी. महोदय न...न.. करके कान पकड़ने लगे. नहीं...नहीं...यह पाप नहीं.

मनीषा आश्चर्य से देख रही थी... टी. टी. महोदय श्रद्धाभाव में अपनी ड्यूटी भूल गये.

‘नहीं...नहीं...देख लीजिए.... आजकल स्वामी जी के भेष में लोग... स्वामी जी टिकट बढ़ाते हुए धीरे से बोले....

पर टी. टी. ने टिकट देखने से साफ़ इनकार कर दिया और पांव छूकर आगे बढ़ गया.

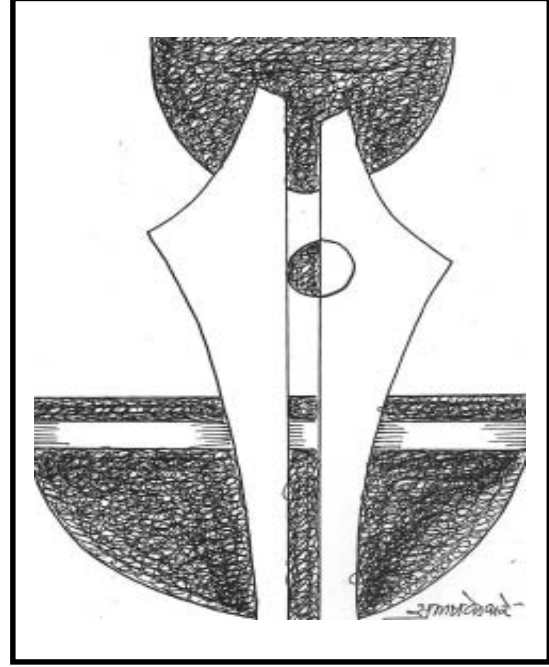
टी. टी. के जाने के बाद सोने से पहले स्वामी जी ने कुछ पाचक चूर्ण खाये. आंख बंद करके ध्यान करने के बाद सोने की तैयारी करने लगे. पिंटू ने दोनों सीटों के बीच की छोटी सी मेज़ पर पीकदान रख दिया. कहीं रात में ज़रूरत पड़ जाये.

मनीषा ने भी लाइट बंद की और चादर तान ली. मन में उथल-पुथल मची थी, डर सताने लगा, रात के अंधेरे में कहीं स्वामी जी ने हाथ लगा दिया तो...क्या करेगी...रोज़ तो ऐसे ढोंगी स्वामियों के क्रिस्से सुनायी देते हैं...मन को समझा भी रही थी....जो होगा देखेगी, ज़ोर से चिल्लायेगी...चप्पल उठा लेगी, और क्या....

देर रात तक करवट बदलती रही और फिर न जाने कब आंख लग गयी. अचानक बातचीत की तेज़ आवाज़ों से भड़भड़ा कर उठी तो देखा कोई स्टेशन आ रहा था उतरने वालों की गहमागहमी थी. सीटों के नीचे से सामान निकाला जा रहा था.

पिंटू स्वामी जी को कुर्ता पहना चुका था और मोजे ढूंढ़ रहा था. स्वामी जी खड़े थे और दूसरा चेला होल्डॉल समेट रहा था. मनीषा ने बाहर देखने की कोशिश की. अंधेरा सा था. कुछ दिख नहीं रहा था. ए. सी. की खिड़कियों से तो और भी कुछ नहीं दिखता.

मनीषा ने पूछा, ‘कौन सा स्टेशन आ रहा है.’



‘झांसी...’ गाड़ी लगभग राइट टाइम थी, सुबह के साढ़े पांच बज रहे थे.

गाड़ी धीमी होने लगी और लोग सामान दरवाज़े पर लगाने लगे. मनीषा भी अब पूरी तरह जाग गयी थी. डिब्बे में रखे हुए सामान के अंबार को देख रही थी. झांसी आ गया. बाहर देखा तो प्लेटफ़ॉर्म पर बड़े-बड़े हार-मालाएं लिये पच्चीस-तीस लोग खड़े थे. स्वामी जी के चेहरे पर चमक आ गयी. इतने लोग उनके स्वागत के लिए! प्लेटफ़ॉर्म पर उनके चरण पड़ते ही ‘जय हो, जय हो’ के नारे लगने लगे.....स्वामी जी का आत्मिक सुख देखते ही बनता था. खुशी से फूले नहीं समा रहे थे. डिब्बे में चढ़ने वाले लोगों की परेशानी देखते ही बनती थी. उस समय उन्हें स्वामी जी और उनके भक्तों का वहां खड़े रहना बिल्कुल नहीं भा रहा था. कुछ लोग उन्हें भला बुरा कह रहे थे. गाड़ी छूटने वाली थी, जैसे-तैसे धक्का मुक्की करके लोग चढ़े.

पर स्वामी जी प्रसन्न थे. भक्त श्रद्धा भाव से विभोर थे वे उनके सुख में अपना सुख ढूंढ़ रहे थे.

✉ ए-१०, बसेरा, ऑफ़ दिन-क्वारी  
रोड, देवनार, मुंबई-४०० ०८८  
मो. - ९८१९१६२९४९



## राजेंद्र तिवारी की गज़लें

१.

सब्र है तो निबाह कर लेगा ।  
 वर्ना ग़म बेपनाह कर लेगा ॥  
 जितनी ज़्यादा हवस बढ़ायेगा,  
 उतने कम ख़ैसबाह कर लेगा ।  
 तू लड़ेगा अगर जो सूज़ से,  
 अपना चेहरा सियाह कर लेगा ।  
 तोड़ देगा वो फिर मेरी तौबा,  
 मेरा दिल फिर गुनाह कर लेगा ।  
 दर्द हो जायेगा दवा जब भी,  
 वो ग़ज़ल से निकाह कर लेगा ।

२.

जैसे भटकाये हिरन को रेगज़ारों का तिलिस्म ।  
 प्यास को भटका रहा है आबशारों का तिलिस्म ॥  
 कौन सुख देगा, न जाने कौन दुख दे जायेगा,  
 हम समझ पाये न किस्मत के सितारों का तिलिस्म ।  
 उससे बिछुड़े हो गया अर्सा न दूटा आज तक,  
 सिलसिला चाहत का, उसकी यादगारों का तिलिस्म ।  
 प्यास, गागर, कश्तियां रुकती हैं साहिल पर मगर,  
 कब नदी को रोक पाया है किनारों का तिलिस्म ।  
 भीगने के बाद भी जलता रहा कोई बदन,  
 जाने कैसा था वो सावन की फुहारों का तिलिस्म ।  
 रुठ कर जैसे अचानक खिलखिला उठे कोई,  
 यूँ खिजां के बाद खुलता है बहारों का तिलिस्म ।  
 देख कर दुनिया को बस इतना समझ पाया हूँ मैं,  
 ये निगाहों का है धोखा या नज़ारों का तिलिस्म ॥

३.

अजीब बात है सबको नसीब दुनिया है ।  
 न ख़्वाब है, न हकीकत, अजीब दुनिया है ॥  
 नयी सदी की हकीकत का फ़लसफ़ा है ये,  
 कोई मसीह नहीं है, सलीब दुनिया है ।  
 वो जा रहे हैं सितारों पे इसलिए रहने,  
 तबाह होने के बिल्कुल करीब दुनिया है ।  
 बहुत करीब से देखा तो हमने ये जाना,  
 अमीर कितनी है, कितनी ग़रीब दुनिया है ।  
 तुम्हीं बताओ कि आखिर किसे रक़ीब कहें,  
 तुम्हीं रक़ीब नहीं हो, रक़ीब दुनिया है ॥

४.

बंद रख, खोल मत ज़बां प्यारे,  
 कोई सुनता नहीं यहां प्यारे ।  
 अब कहां ज़िंदगी तलाश करूं,  
 दूँड आया, कहां-कहां प्यारे ।  
 इस तरह तय हुआ सफ़र अपना,  
 हर क़दम जैसे इम्तेहां प्यारे ।  
 राह दिखलायेंगे ज़माने को,  
 छोड़ जा पांव के निशां प्यारे ।  
 नींद आती, न ख़्वाब आते हैं,  
 हो गया कौन मेहरबां प्यारे ।  
 छोड़ भी, ये तकल्लुफी बातें,  
 तू कहां और मैं कहां प्यारे ।  
 ❦ 'तपोवन', ३८-बी, गोविंद नगर,  
 कानपुर-२०८००६



कहानी

यही तो संसार है

कमल कपूर

**‘म**म्मा! आपका पार्सल आया है,’ भरी दोपहरी में सोते से आन जगाया स्नेहा ने.

‘पार्सल? कहां से आया है? किसका है?’

‘पता नहीं, आप खुद ही देख लें.’

साइन करके पार्सल लिया...झालावाड़ से आया था. सुधीर और सुबोध ने भेजा था. ‘क्या होगा इसमें?’ जिज्ञासा धीरज नहीं धर पा रही थी. धड़कते दिल से जल्दी-जल्दी पार्सल खोला. ‘वाओ!’ खुशी से चहक उठी मैं. एक सादी सी, खूबसूरत गुलाबी सूती साड़ी थी, साथ में एक मर्दाना शर्ट पीस भी था. और चंद शब्दों का एक खत भी - ‘जीजी बाई, है तो ये बेहद मामूली सी धोती पर इसमें हम भाइयों का प्यार छुपा है. आप इसे क्रबूल करेंगी तो हम सोचेंगे कि हमारी शकुन की आत्मा को सुकून मिल गया. जीजाजी साहेब के लिए भी एक मामूली-सा क्रमीज का कपड़ा है. जो उनकी हैसियत को देखते हुए कुछ भी नहीं है...इसके लिए हम माफ़ी मांगते हैं. जीजी बाई, जब आपसे पहली बार मिले थे तभी आप में अपनी शकुन नज़र आ गयी थी हमें, इसीलिए राखी की भेंट के तौर पर ये सूत की धोती भेज रहे हैं...सुधीर-सुबोध.’

मेरा दिल भर आया और आंखें भी कि आज की इस मतलब परस्त दुनिया में, जहां सहोदर भी रिश्तों की जंजीरों को तोड़ने पर उतारू हैं...राजस्थान के एक छोटे से...अप्रसिद्ध से शहर झालावाड़ में रहने वाले मात्र दो-तीन घंटे के साथी भाई नये सिरे से रिश्ता जोड़ रहे हैं या फिर मुझमें अपनी खोयी बहन को तलाश रहे हैं. मैं क्या करूं? बिन भेजी राखी का ये तोहफ़ा स्वीकार कर क्या इस नेह की डोर को थाम लूं या....? स्नेह से साड़ी पर हाथ फेरते हुए यादों का हाथ थाम कर मैं उस गुजरे वक्त की चौखट पर जा खड़ी हुई जो चंद महीनों की दूरी पर ही तो खड़ी थी ‘आज’ से.

... जिंदगी के सफ़र के अंतिम पड़ाव... हरिद्वार के कनखल घाट पर विजय भैया, पापा और पति विनय के

साथ खड़ी मैं उस काले बाज़ार को देख रही थी जहां मौत को भी व्यापार बनाया जा रहा था. विजय भैया ने मां की अस्थियों की पोटली को कस कर सीने से लगा रखा था. बचपन में मां भी तो ऐसे ही कस कर भैया को सीने से लगाती होंगी. वक्त कैसे करवट बदल लेता है? मेरी कितनी अच्छी, ऊंची-लंबी और तंदुरुस्त सुदर्शना मां कैसे मुड़ी सी अवशेष बन कर इस आधे गज की पोटली में समा गयीं, ये अटपटे से ख़्याल मुझे बरबस रुला गये.

‘चलिए जजमान, आये साहेब’, की पुकार लगाते हुए चंद पंडे-पंडित हमारे इर्द-गिर्द मंडरा रहे थे. ये लोग भी न...पहरावे और चाल-ढाल से ही इंसान की हैसियत को पहचान लेते हैं और फिर हम तो एक शानदार कार से उतरे थे इसलिए शायद उनकी नज़रों में मोटी मुर्गीं थे जिसे हलाल करने के लिए मानो होड़ सी लगी हुई थी. मेरा मन कड़वा हो गया. ‘पापा, ये लोग तो मौत को भी कैश करते हैं. किसी की भावनाओं की कोई क्रीम नहीं यहां.’

‘बेटे. इसमें इनका कोई क्रसूर नहीं. इन्हें भी तो अपने बाल-बच्चे पालने हैं न? बेटा, इतना याद रखना कि हर मौत किसी न किसी भूखे पेट के लिए भोजन जुटाती है. रोजी-रोटी जो न कराये थोड़ा. चलो, अब घाट पर चलते हैं.’

‘नहीं पापा, थोड़ी देर और रुक जायें.’ मां के अंतिम अवशेषों को कुछ देर और रख लेने का लोभ हो गया था मुझे.

‘ठीक है बेटा.’

मैं मौन भाव से खड़ी पापा द्वारा बताये गूढ़ दर्शन को समझने की कोशिश कर रही थी कि एक उच्च रूदन स्वर ने मेरे विचारों के तानों-बानों को उलझा दिया. ...सामने ही ज़मीन पर बिछी एक मैली सी चादर पर बैठी एक वृद्धा विलाप कर रही थी. एक नयी उम्र का युवक पास बैठा उन्हें ढाढस बंधा रहा था और एक परिपक्व उम्र का युवक विजय भैया की तरह ही अस्थि-फूलों की पोटली सीने से लगाये सिर झुका कर खड़ा था. वृद्धा के समीप ही प्लास्टिक के

जन्म : कोटा (राजस्थान)



**प्रकाशन** : अनेक विधाओं में सक्रिय रचनाकार. 'रिशतों के रंग', 'नैहर छूटो जाये', 'आस्था के फूल', 'छांव', 'अम्मा का चश्मा', 'नीम अब भी हरा है' (कथा-संग्रह), 'जिंदगी के मोड़', 'गुलमोहर हंस उठे', 'सुबह से सांझ तक' (काव्य-संग्रह).

**अन्य** : नारी अभिव्यक्ति मंच 'पहचान' की अध्यक्ष तथा पत्रिका 'पहचान' की प्रधान संपादिका. अखिल भारतीय लेखिका मंच 'त्रिचा' की सक्रिय सदस्य और राष्ट्रीय राजभाषा पीठ 'प्रयास' व अनेक समाज-सेवी संस्थाओं से संबद्ध.

**सम्मान** : हरियाणा साहित्य अकादमी से पुरस्कृत, राष्ट्रीय राजभाषा पीठ, इलाहाबाद से 'भारती-भूषण' एवं 'भारती-रत्न' से सम्मानित. शिखर चंद जैन स्मृति पुरस्कार, श्री स्वरूप सिंह रामेसरा स्मृति सम्मान, सुभद्रा कुमारी चौहान पुरस्कार, राष्ट्रीय शिखर सम्मान सहित अनेक राष्ट्रीय व प्रादेशिक सम्मान प्राप्त.

दो बोरेनुमा बैग धरे थे. मेरा भीगा मन और भीग गया. 'पापा, कौन गया होगा इनका?'

'जरूर इनके पति गये होंगे. इनकी दीन-हीन दशा और सफ़ेद साड़ी से तो यही लगता है.' विनय ने कहा तो मैं खुद को रोक न पायी और उनके पास आ कर बैठ गयी. 'अम्मा जी, कौन गया है आपका?' मैंने झिझकते हुए पूछा.

'मेरी फूल-सी बच्ची गयी री मेरी लाड़ो.' उनका कुछ धीमा हो चला रूदन-स्वर फिर ऊंचा हो गया.

'ओ माय गॉड!' मेरे कलेजे को जैसे किसी ने आरी से चीर दिया हो. अपना ग़म तो जैसे उस पल भूल ही गयी थी मैं. जीवन की नश्वरता पर अभी ताज़े-ताज़े सुने उपदेश उनके सामने बिखेर दिये मैंने, 'अम्माजी, जो आया है जग में, उसे एक दिन तो जाना ही है न? भगवद्गीता में श्री कृष्ण महाराज जी कहते हैं, जन्म के साथ ही मृत्यु की घड़ी भी तय हो जाती है और फिर...'

'जानती हूँ बिट्टो, सब को जाना है पर इतनी कच्ची उमर में? बेवक्त की मौत मरी है मेरी बच्ची. इन दो भाइयन की अकेली बहना थी और न जाने कितने मंदिरों की देहरियां चूम-चूम कर ली थी भगवान से और...हाय, मेरी शकुनु...ऊ.'

'क्या हुआ था उन्हें?'

'कछु नहीं हुआ था बिटिया. ससुराल वालन ने मार दर्ई. मुओं का कभी जी नहीं भरा. ये ला पीहर से, वो ला,

खेत-खलिहान बिक गये. बिटिया के ग़म में बेचारा बाप चल बसा, पर उन हत्याओं को सरम ना आयी. बाप तो बेचारा चल बसा, एक मैं ही रह गयी रोवन के खातिर.' उनके आंसू बांध तोड़-तोड़ कर बह रहे थे.

'चुप कर जाओ अम्मा. रोने को तो सारी उमर पड़ी है. अभी तो बिटिया के फूल इज्जत से गंगा मैया को सौंपने की सोचो. वे लोग तो कह रहे हैं, तसल्ली रखो, अभी भीड़ है, जल्दी बारी न आवेगी.' भाई ने शकुन के फूलों की पोटली को स्नेह से सहलाते हुए बुझे स्वर में कहा.

मन फिर भटक गया...इनकी यह प्यारी लाइली बहन लहंगा-चोली या धोती-साड़ी पहन कर पायल छनकाती आती होगी भाइयों को राखी-टीका करने और हंस, हंस कर इतरा कर नेग/उपहार वसूल करती होगी और आज कैसे दुबकी पड़ी है इस छोटी-सी पोटली के अंदर, भटकते विचारों पर ब्रेक लगाया अम्माजी के दर्द घुले स्वर ने, 'अरे काहे आवेगी हमारी बारी जल्दी लल्ला. हमें तो भगवान हमेसा बदनसीबी की कतार में ही सबसे आगे खड़ा करे हैं.'

'अम्माजी. इन 'बैग्स' में शकुन के कपड़े-लत्ते हैं क्या, जिन्हें आप गंगाजी में बहाने के लिए लायी हैं?'

'अरे, काहे के कपड़े-लत्ते बिट्टी? राख है अभागी की इनमें. दो बार आग में जली मेरी बिन्नो. पहले ससुरालियों ने जलायी फिर चित्ता में जली. छोरे राख भी इसी कारण

ढो कर लाये हैं कि सायद गंगा जी के पावन पानी के परस से आत्मा ही टंडी हो जाये उनकी लाड़ो की.'

'जीजी, हम बहन के काज को जितनी जल्दी निपटाना चाहते थे ये लोग उतनी ही देर कर रहे हैं. हमारी बच्ची की, आत्मा बड़ा दुख पा रही होगी जीजी.' उस नवयुवक भाई ने कहा तरल स्वर में.

'बिटिया, तुम किसे बिदा करने आयी हो?' जैसे कोई भूली कहानी याद आ गयी अम्माजी को...इन पलों में कुछ देर के लिए तो मैं भी भूल गयी थी जैसे कि मैं यहां क्यों खड़ी हूं.'

'अपनी मां को गंगाजी के हवाले करने आयी हूं अम्माजी,' मेरी रुलाई छूट गयी.

'ना बच्चे ना, अब बिदा-बेला में आंसू नहीं बहाने, तेरी मां की आत्मा तकलीफ़ पायेगी. तुझमें तो प्राण बसते थे उसके.' पापा ने पुचकारा तो मैं उनसे लिपट गयी. 'पापा, मैं क्या करूं? अब तक तो लग रहा था मां कहीं नहीं गयी. हमारे साथ हैं मगर अब फूल-विसर्जन...के बाद...ओ पापा. मेरी मां चली गयी, मैं अकेली रह गयी.'

मुझे बांहों में भर कर अम्माजी दुलार से बोली, 'अरे बिटिया, ना बोल ऐसे कुबोल....काहे है तू अकेली? जीवें तेरे बाप-भाई, मैका बना रहे तेरा और जीवे तेरा ये सुहाग. अरी बावली बेटी, तेरी मां रोवन जोगी थोड़े ही है. भागों वाली थी जो अपने बच्चों के हाथ में गयी....वह भी सेंदूर-बिंदिया सजाये. ऐसी मौत तो बड़े करमों वालों को नसीब होवे है बिट्टो. औलाद के हाथों मां-बापू की जान निकले, कभी मां-बाप के हाथ औलाद ना जावे.' अब अम्माजी के लिए मानो अपना ग़म गौण और मेरा प्रधान हो गया था. यही तो हैं संवेदनाओं के कच्चे मगर मजबूत तार जो दो दिलों को बरबस बांध देते हैं.

बड़े भैया फिर एक बार घाट का चक्कर काट कर आये थे, 'अम्मां, सोना मांग रहे हैं फूल-विसर्जन के लिए. कह रहे हैं जवान मौत थी, वह भी अकाल. स्वर्ण-दान के बिना मुक्ति नहीं मिलेगी.'

'ओ मोरे रामजी, अब कहां से लावें सोना इस बखत.' दोनों हाथों से सिर थाम कर अम्माजी फिर रो पड़ीं.

मैंने पहली बार ठीक से देखा, उनके तन पर रती भर भी तो सोना नहीं था. दर्द की एक तीखी लहर ने मेरे मन को ही नहीं. अंतर्मन को भी भिगो दिया. मैंने पर्स

खोला, उसमें से नन्हें-सी सोने की वह गिन्नी निकाली जो कभी मां ने ही मुझे दी थी.' लीजिए और आइए मेरे साथ आप सब घाट पर, विनय और पापा, भैया आप भी आइए. अब देर नहीं करनी है हमें.'

आज मैं बेझिझक स्वीकार करती हूं कि उस समय घोर श्मशान-बैराग ने जकड़ रखा था मुझे, तभी शायद इतना बड़ा दिल कर पायी अन्यथा सामान्य अवस्था में 'वैसा' पुण्य-कर्म न कर पाती मैं.

घाट पर मंडरा रहे पंडों से कहा मैंने, 'मैं दिवंगता की बड़ी बहन हूं. मैं फूल विसर्जित करवाऊंगी उसके, जिसे मंजूर हो सामने आ जाये, जो दान-दक्षिणा लेनी हो खुल कर ले, मैं दूंगी पर इनसे कुछ न मांगे. ये बेचारे तो पहले ही गमों के मारे हैं.'

'कैसी बातें करती हो बेटा तुम? पिता के होते हुए तुम क्यों करोगी ये काज? आइए पंडित जी.'

देखने वालों ने देखा वह अद्भुत सा नज़ारा... उस देव नदी के तट पर एक साथ दो विसर्जन हो रहे थे. पापा मां के फूल विसर्जित कर रहे थे और वे दोनों भाई अपनी दुलारी बहन के. गेंदे-गुलाब के फूलों से लिपटे वे फूल....किसी की मां के थे तथा किसी की बेटी के.

दो विपरीत दिशाओं की ओर बह कर जाते मां तथा शकुन के फूलों ने सहसा अपने बहाव का रुख मोड़ दिया और एक-दूसरे में आ मिले. अब पहचानना असंभव था कि उनमें से कौन से फूल मां के हैं और कौन से शकुन के. ऐसा लग रहा था जैसे मां ने आगे बढ़ कर शकुन को अपने आंचल में छुपा लिया हो. 'माएं होती ही ऐसी हैं,' एक टंडी सांस ले कर सोचा मैंने.

अम्माजी के झुर्रियों भरे चेहरे पर परम संतुष्टि की दो लकीरें साफ़ नज़र आ रही थीं. 'बिट्टो, तूने आज अपनी मां का सही मायने में तर्पण किया है. आज तेरी मां की आत्मा घनी खुस होवेगी और मेरी शकुनु भी मुक्ति पा जावेगी.'

गऊ घाट पर सारे अंतिम काज संपूर्ण करके हर की पौड़ी की ओर आते हुए गलियारे की तरह लंबे-सकरे से बाज़ार से गुजरी तो जालीदार पैकिंग में लाल हरे-पीले लकड़ी के खिलौनों को देख कर पल भर के लिए ठिठक गयी मैं, तो पापा को जैसे कुछ याद आ गया, 'विनी, तुझे याद है बेटा, सात-आठ साल की थी तू, जब हम गंगा-नहाने आये थे तो इन खिलौनों को देख कर तू मचल गयी

लघुकथा

सार्थकता

दिलीप भाटिया

कैलाश हर जन्म-दिन पर मंदिर के दान-पात्र में एक सौ एक रुपए भेंट कर आता था। इस वर्ष मंदिर जाते समय वह राह में इस दान की सार्थकता पर चिंतन-मनन-मंथन करता रहा एवं लीक से हटकर सात्विक सार्थक दान करने का संकल्प लेते हुए विचार करता रहा।

मंदिर में पहुंचकर देखा कि मंदिर समिति के अध्यक्ष, जो दान-पात्र की संपूर्ण राशि लेते हैं, मंदिर परिसर में उनके निवास के बाहर वातानुकूलित कार खड़ी थी, अंदर मंदिर में पुजारी जो दर्शनार्थियों को प्रसाद वितरित कर रहे थे, उनके समक्ष कूलर चल रहा था। एक भक्तन मंदिर में तुलसी की १०८ परिक्रमा कर रही थी।

कैलाश ने देखा कि एक वृद्धा माई मंदिर के आंगन में झाड़ू लगाकर फ़र्श की सफ़ाई करते समय अपनी पुरानी सी बदरंग साड़ी के पल्लू से माथे का पसीना पोंछ रही थी।

कैलाश ने एक सौ रुपये का नोट वापिस अपने पर्स में रखा। पाच सौ का नोट निकाला एवं वृद्धा माई के चरण स्पर्श कर ५०१ रु. उन्हें दिये और कहा, 'माताजी, आज मेरा जन्म-दिन है, आप अपने लिए दो साड़ी ख़रीद लीजिए। मुझे आशीर्वाद दीजिए, माताजी.'

मंदिर का पुजारी कैलाश को घूर रहा था। वृद्धा माई पल्लू से आंखें पोछती हुई, 'जीते रहो बेटा. भगवान तुम्हें सुखी रखें.' का आशीर्वाद कैलाश को दे रही थी।

३७२/२०१, न्यू मार्केट, रावतभाटा, कोटा-३२३३०७. मो. : ९४६१५९१४९८

थी तो मैंने तुझे डांटा था. अब बड़ी हो गयी हो तुम! नर्सरी की बच्ची नहीं जो इन खिलौनों से खेलोगी...'

'और मां ने आपकी आंख बचा कर चुपचाप ख़रीद लिये थे ये खिलौने,' मेरे होंठ इस तरह मुस्करा उठे मानो मां ने अब फिर ख़रीद लिये हों वे खिलौने. हम सारे साथ-साथ हर की पौड़ी पहुंचे तो चुपचाप अम्माजी ने एक पैकेट मुझे थमा दिया...ये वही रंगारंग लकड़ी के खिलौने थे. मेरी आंख छलक उठीं, मां तो हर हाल में मां ही है... एक की नहीं सबकी.

गंगा में डुबकी लगाते हुए सहसा मेरे हाथ से सांकल छूट गयी तो अम्माजी चिल्लायीं. 'अरे बिटिया संभल के.'

फिर मां याद आ गयी...उन्होंने तो मुझे गंगा में उतरने ही नहीं दिया था. पहली सीढ़ी पर अपनी गोद में ही बैठा कर नहला दिया था मुझे...तब मां मेरे साथ थी और उनके स्पर्श भी, आज मां सिर्फ़ मीठी याद बन कर मेरे साथ हैं.

अंततः रुखसत की घड़ी आयी. नाम, पता, ठिकानों के बारे में एक दूजे से पूछा गया... पते लिये-दिये गये. गम, मिठास तथा संवेदनाओं के आर्द्र पल थे वे जब हमने एक-दूसरे से विदा ली-दी... और अब आठ महीनों बाद मुझे उन प्रिय भाइयों ने बिन भेजी राखी का उपहार भेजा था.

मैं तो भूल ही गयी थी कि उस दिन एक रिश्ता खत्म हुआ था तो एक जुड़ा भी था. अम्माजी ने शायद उसी दिन मुझमें अपनी बेटी को देख लिया था, मैं ही उनमें अपनी मां को न देख पायी... शायद अब भी न देख पाऊं. यही तो बुनियादी अंतर है मां और बेटी में. हां, इतना अहसास ज़रूर हो गया मुझे कि इस भरी दुनिया में चाहे मेरी मां नहीं हैं पर मां सी 'कोई' ज़रूर है और दो सीधे-सादे सरल से भाई भी हैं जिन्होंने अदृश्य प्रेम की डोर से मुझे एक नये नेह-बंधन में बांध लिया है...उन्हें एक बहन की ज़रूरत है जो शकुन की क्षति को पूरा कर सके. हम क्यों सदा मोह-बंधनों में बंधे रहना चाहते हैं? क्यों नहीं जी सकते हम रिश्तों के बिना? हम टूटते हैं जुड़ते हैं, बिखरते हैं, सिमटते हैं, मिलते हैं, बिछुड़ते हैं, जीते हैं, मरते हैं, फिर जन्म लेते हैं... सदियों से चले आ रहे हैं ये अंतहीन सिलसिले और सदियों तक चलेंगे... यही तो संसार है. एक ठंडी सांस लेकर सोचा मैंने और अपने नये भाइयों को पत्र लिखने बैठ गयी.

२१४४/८, फ़रीदाबाद-१२१००६

मो.९८७३९६७४५५

ई-मेल : KamaI\_kapur2000@yahoo.com

## कहानी

## सामगुली

✍ मदन मोहन प्रसाद

**कु**छ काम कराना है बाबू?’ पीठ पीछे, दायें हाथ में टांगी पकड़े वह बोला।

‘कुछ काम तो मेरे पास ना है अभी?’ अहाते के भीतर से सिर को दायें-बायें करते हुए मैंने कहा।

‘कुछ काम करा लो बाबू!’ कल भी हमको कोई काम ना मिला. गेट को पकड़े हुए उसने कहा।

‘कहा न! कुछ काम नहीं है मेरे पास.’ खीझते हुए मैं बोला।

‘काम तो है तेरे पास बाबू?’ याचना भरे शब्दों में उसने कहा।

‘क्या काम है, बता!’ चश्मे के ऊपर से झांकते हुए मैंने पूछा।

‘आपके अहाते में आम के पेड़ पर सूखी लकड़ी है.’

‘तो उससे हमें क्या लेना,’ नज़र घुमाते हुए मैंने कहा।

‘हमको काम है बाबू! हम काट कर ले जायेंगे. घर में खाना पकेगा. जलावन बिना कल खाना नहीं बना. बाबू आज हमको घर से भगा दिया है. माय बीमार है, जलावन हो जायेगा, तो बाबू माड़-भात बना देगा,’ निरीह नज़रों से देखते हुए उसने कहा।

‘नाली साफ़ करना तू जानता है,’ उसके पहनावे को देखते हुए मैंने पूछा।

‘बाबू की बात! मेहनत करनी, पार उतरनी. हर काम जानता हूँ. मजदूरी करनी है तो देह सिकोरने से काम नहीं चलेगा. क्या पैसे दोगे और काम कितना है.’ उत्सुकता ज़ाहिर करते हुए वह बोला।

‘काम मैं बताऊंगा, पैसे तू बतायेगा, पर अभी नहीं. अभी मुझे बाहर जाना है. पहले तू आम की सूखी लकड़ी काट कर अपने बाबू को दे आ, खाना पकाने के लिए. फिर जब चाहे आकर काम करना, पैसे ले लेना.’ उसे गेट के अंदर आने का इशारा करते हुए मैंने कहा।

‘तेरा नाम क्या है और तू कहां रहता है?’ कौतूहलवश मैंने पूछा।

‘मैं सामगुली हूँ, जाति का नट, नहर पर घर है मेरा. नटवा सब जहां रहता है ना! वहीं पर. हमारा एक छोटा भाई है और दो बड़ी बहनें. माटी का मकान है हमारा, बाबू ने बनाया है. छत की जगह पुआल की पलानी है. छप्पर हर साल नया बदलता है. ना बदलेगा तो बरखा का पानी चूने लगेगा.’

‘क्या काम करता है तेरा बाबू?’

‘कुछ काम ना करता है. हमलोग मजदूरी ना करते हैं. लकड़ी-काठ काटते हैं, जलावन के लिए. अभी कारोबार मंदा है, तो मजदूरी कर लेते हैं.’

‘क्या कारोबार है तेरा,’ उत्सुकता वश मैंने पूछा. नज़रें नीचे करते हुए उसने कहा।

‘बाबू सांड और भैंसा रखा है. उसी से गाय-भैंस बरदाता है. अभी जादा टंड है ना! सो काम मंदा है.’

‘क्या पैसा मिलता है बरदाने पर?’ जिज्ञासा वश मैंने पूछा।

‘कोई ठीक ना है बाबू? कभी पचास, कभी सत्तर-अस्सी. मोटर वाला साहेब आता है, तो सौ सवा सौ रुपया भी देता है.’ हाथ ऊपर करते हुए वह बोला।

‘और गर्भ ना ठहरा तो?’

‘उसकी जिम्मेदारी हमारी ना है? पचास-सौ रुपया में गर्भ का ठेका कौन लेगा. बच्चा होगा तो कितना रुपया का होगा, सोचो! हम लोग को रोज़ कमाना, खाना है, सो रेट का पैसा ले लेते हैं. कोई-कोई जानवर तो एक बार में ही गाभिन हो जाता है, कोई बहुत परेशान करता है. जल्द नहीं मानता.’

‘तुमने कुछ पढ़ाई की?’ मैंने पूछा।

‘ना!’ दो टूक वह बोला।

‘क्यों?’

‘बाबू नहीं पढ़ाया.’



०८ फरवरी १९४८  
खोपिया, भोजपुर (बिहार), स्थातक विज्ञान

**प्रकाशन** : 'हंस', 'आम आदमी', 'नागरी', 'सनद', 'साहिती सारिका', 'समकालीन अभिव्यक्ति' पत्रिकाओं में कहानियां प्रकाशित, 'सावित्री का सच' और दो कहानी संग्रह प्रकाशित.  
**संप्रति** : स्वतंत्र लेखन तथा सामाजिक सरोकार.

'पास में कोई स्कूल है?'

'नाही! स्कूल खोला था, एक मास्टर, फिर बंद कर दिया.'

'सरकारी स्कूल कितनी दूर है?'

'थोड़ा दूर है, बाबू नहीं जाने दिया. कहा कि पढ़ने जायेगा तो काम कौन करेगा.'

'बहन की शादी हुई?'

'बड़ी वाली की शादी हुआ.'

'बहनोई का क्या कारोबार है?'

'वही, जो हमारा है. बहनोई भी सांड-भैंसा रखा है.'

'ठीक है, तुम जाकर पेड़ से लकड़ी काटो.' ऐसा कहते हुए मैंने उसे पेड़ की तरफ जाने का इशारा किया.

उस दिन लकड़ी लेकर सामगुली गया सो गया. फिर वह लंबे समय तक ना दिखा. दुनिया घूम-घुमैया है और कभी-कभार वह चीज़ हमें मिल जाती है, जिससे हम बिछुड़े थे. सामगुली हमें फिर मिला.

वह नवी मुंबई का सुपर बाज़ार था, डी मार्ट. वहां से निकल कर मैं ऑटो-रिक्शे का इंतज़ार कर रहा था. ऑटो-रिक्शा आया, मैं उस पर सवार हुआ और वह चल पड़ा.

झाड़व ने शीशे से दो-तीन बार मेरी तस्वीर को गौर से देखा. फिर वह अनायास बोल पड़ा - 'बाबू आप पटना से हो?'

'क्या बात है?' जिज्ञासावश मैंने पूछा.

'पटना में मैंने आपको देखा था, बहुत दिन पहले.

मेरी याद सही है ना!' सर घुमा कर देखते हुए उसने पूछा.

'हां तेरी याद पक्की है. देखा होगा, मैं पटना में ही रहता हूं. कब तुमने मुझे देखा था?' चश्मे को ठीक करते हुए मैंने पूछा.

'काफ़ी पहले की बात है साहब! मैं लकड़ी काटने आपके ठिकाने पर गया था. सूखी आम की लकड़ी! याद करो! मेरा नाम सामगुली है, सामगुली नट!' आटो-रिक्शा धीमा करते हुए वह बोला.

'अच्छा ! तो तुम सामगुली हो!'

'हां मैं सामगुली हूं, याद करो आप! उस दिन आम की लकड़ी काटने के बाद दूसरे दिन मुझे आपके घर काम करना था पर मैं ना आया.'

'कोई बात ना है! ना आया तो!' मुस्कराते हुए मैंने कहा.

'बात है बाबू! वादा मैं ना तोड़ता हूं. बात भी ग़जब चीज़ है. एक बार किसी का वादा पूरा कर दो, तो वह अपना छाप आपके पास छोड़ जाता है, वरना उपेक्षा और उपहास होता है, बराबर! मैं ग़लत बोला!' रिक्शा तेज़ करते हुए वह बोला.

'सही बात कही तुमने. यहां कब से हो!' उसे देखते हुए मैंने पूछा.

सामगुली ने अपनी बात कहनी शुरू की. उसकी जुबानी सुनिए —

'उस रात असामाजिक संगठन का घेरा मेरे घर पर पड़ा. पहले दरवाजे पर 'खट' सी आवाज़ आयी. हम लोग नींद में थे, उस आवाज़ को टाल गये. दरवाजे से 'खटाक-

खटाक' की आवाज़ आयी. किसी ने उस पर हथौड़े से तेज़ प्रहार किया था. बाबू जग गया. जाड़े की रात थी. ठंड चरम पर थी. ऐसी रातें भी क्या चीज़ है बाबू! आदमी ठिठुरता है और गाय भैंस गरम हो जाती हैं. गरमाने पर उनकी देह में आग की ज्वाला फूटती है और बरदाने के लिए वह बेचैन हो जाती हैं. चीखती हैं, चिल्लाती हैं, फिर उसका मालिक-मौआर उसे लिये दिये उसी वक्र भागता आता है हमारे पास. हमारे बाबू का इमरजेंसी हमेशा खुला रहता है, चौबीस घंटे जहां डॉक्टर हैं, सांड और भैंसें. एक बार वेटनरी डोज़ पड़ा कि सारी बीमारी खत्म. फिर मालिक खुशी से सौ-पचास देकर जाता है. मेरी तरफ़ देखते हुए सामगुली ने कहा.

'इमरजेंसी की फ़्रीस तो ज़्यादा होती होगी, सामगुली.' हंसते हुए मैंने पूछा.

'ना बाबू. जो रेट है वही लगता है, ज़्यादा नहीं. हम लोग ग़रीब हैं पर चांडाल नहीं, डॉक्टर तो रात में अपनी फ़्रीस बढ़ा देता है, जितना चाहे! ज़्यादा मुसीबत में ज़्यादा रुपये लेता है, वरना केस ख़राब कर देगा. डराता है, धमकाता है, और पैसे टगता है, परंतु हमारा सच्चा काम है, कोई लालच या धोखा नहीं. वैसे हमारा काम भी इमरजेंसी का ही है. धंधा मंदा चल रहा था, ऐसे में नींद कोई मायने नहीं रखती. पेट में आग लगी हो तो और कुछ नहीं सूझता. देह की हड्डी गलाकर भी उसे भाठना पड़ता है. बाबू को लगा कि भाग जगा है, कोई आसामी आया है. बाबू उठकर दरवाज़े के पास गया और पूछा, 'कौन हो बाबू?'

'तेरा बाप!' उधर से आवाज़ आयी.

'मेरा बाप तो सात साल पहले मर चुका है.' बाबू बोला.

'अरे वह तो गया सो गया. तेरा दूसरा बाप बोल रहा है, खोल दरवाज़ा!' उधर से आवाज़ आयी.

'दूसरा बाप! मेरा कोई दूसरा बाप नहीं है. एक ही बाप था, गूंगा नट, न बोलने वाला जीव. रामी और कट्टे से खेलता था वह, किसी से मुंह नहीं लगता. उसके डर से इलाका कांपता था.' बाबू ने कहा.

'तो समझो वही आया है, ऊपर से उतर कर. अब तेरे से कोई बात न करनी. अगली आवाज़ के साथ तेरा क्वाड टूटेगा, फटेगा और तू बाहर आयेगा', मैं भी जग

गया था, बाहर, भीतर की बात सुन रहा था. मेरा खून खौल गया. पुआल के नीचे से मैंने कड़ा निकाला और दायें हाथ में संभाल लिया. मुझे शांत रहने का इशारा कर बाबू ने दरवाज़ा खोला. सामने एक गोरा आदमी सेना की पोशाक पहने खड़ा था. सर पर उसने लाल टीका कर मुरेठ बांध रखी थी. उसने बाबू से नज़रें चार कीं. फिर उसने मुझे देखा और मेरे हाथ के कट्टे को.'

'तेरा ही नाम साधु है.' उसने बाबू से पूछा.

'हां, मैं ही साधु हूं.' बाबू ने कहा.

छोकरे को कह कि हथियार फेंक दे. ऐसे कट्टे और बंदूक के साथ पचासों जवान बाहर खड़े हैं. तेरा सारा परिवार खत्म हो जायेगा. अगर तूने आवाज़ उठायी या नज़रें तेज़ कीं तो.

बाबू ने इशारा किया. भारी मन से मैंने कट्टे को फेंक दिया. सामने का कमांडर मुझे घूर रहा था.

कमांडर ने कहा 'साधु! तेरा एक बेटा साम है.'

'हां! सामने खड़ा है. तुझे नाम किसने बताया.' बाबू ने पूछा.

'बताया, किसी भेदिये ने, काले चोर ने. इतना बेचैन क्यों हो गये साधु. तेरा बेटा साम है न! बस इसी से मतलब रख.' वह बोला.

'ठीक है. क्या किया है साम ने!' बाबू ने आशंकावश पूछा.

'कुछ नहीं किया है, अब करेगा.'

'क्या करेगा.'

'सेना का सिपाही होगा, फिर सेनानायक होगा.'

'कैसे!' बाबू ने भयग्रस्त होते हुए पूछा.

'उसे हम बहाल करेंगे, साधु. यह सरकार की सेना नहीं है. जनता का संगठन है, ग़रीबों का संगठन है. दबे-कुचले दलित वर्ग की संस्था है जहां सामाजिक न्याय के लिए मरना-मारना पड़ता है. इस लड़ाई में तेरा भी सहयोग चाहिए, क्योंकि तू भी ग़रीब है मजदूर है. कमांडर ने कहा.

बाबू भयाक्रांत था. नज़रें नीची किये उसने कहा — 'मेरा बेटा कहीं न जायेगा. वह मेरे साथ ही रहेगा. मरने-मारने की बात मेरे गले नहीं उतरती.'

'ठीक है साधु, कोई बात नहीं. संगठन के लिए और लड़के मिल जायेंगे मुझे. अपने बेटे को अपने साथ रख, बुढ़ापे में सेवा करेगा. परंतु फिर तुझे संगठन में कुछ पैसे



देने पड़ेंगे.’

‘पैसे?’ बाबू ने कमांडर को देखते हुए कहा.

कमांडर ने मेरे बाबू से कहा — ‘तुझे महीना पर पांच हजार रुपये देना है.’ बाबू ने उसकी बात नकारी. बाबू को कट्टा दिखाते हुए उसने कहा — ‘ना करने का नतीजा खराब होगा. कट्टे से पूरे परिवार का गर्दन छोप कर छः इंच छोटा कर दूंगा.’

पूरे परिवार के सफ़ाये की बात सुन, बाबू भीतर से कांप गया परंतु उसे वह कैसे समझाता, कैसे पांच हजार रुपये भरता. वह उसके सामने रोया, गिड़गिड़ाया, परंतु कमांडर की आंखों में ज्वाला थी. वह जादा बात ना करता था. वह जो बात कह देता वह पूरा करना पड़ता.

कमांडर ने बाबू को एक मौक़ा और दिया. चाहे तो वह समझौते को मान ले, तब उसे कोई रुपये नहीं देने होंगे. मेरी छोटी बहन या मुझे वह संगठन में लेना चाहता था. मेरा खून खौल रहा था. कट्टा तो मेरे घर में भी था, चाहता तो मैं कमांडर को काट कर टुकड़े में बांट देता, पर बाबू ने रोक दिया. घर के बाहर उसके जवान भरे पड़े थे. हम अपने घर में अशक्त थे. छोटी बहन भी जवान हो रही थी, उसे देख बाबू के आंखों में बरसात आ गयी. अंततः वह टूटा और मुझे कमांडर के हवाले कर दिया. कमांडर मुझे लेकर वहां से तिरोहित हो गया. — लाल सिगनल पर गाड़ी रोकते हुए उसने कहा.

चढ़ती जवानी थी, मेरे शरीर में गर्म खून था, ऐसे जोशीले जवान की ज़रूरत कमांडर को थी. उसने मुझे अपने साथ रखा. रात में मैं उसके साथ घूमता, दिन को बियाबान जंगल में हथियार चलाने का अभ्यास करता. मेरे होठ सूखे थे, आंख सूखी थी, चेहरा रूखा था और मैं भाग्य की डगर पर लुढ़कता जा रहा था.

तीन माह बाद संगठन की लड़ाई में मैं जाने लगा. बम-पटाखे लगाना, दुश्मन को धोखे से मारना, सरकार और पुलिस बल का मनोबल तोड़ना, संगठन का रूटीन काम था. किडनैप होने के बाद एक से एक बड़ा आदमी और अफ़सर हमारे पैरों को चूमता. साहब, शरीर ही आदमी की बड़ी कमज़ोरी है. हथियार देखते एक से एक शेर बिल्ली बन जाते हैं. सब कुछ हमने देखा है, सब कुछ हमने किया है, परंतु बाहरी मन से, कमांडर का मन रखने के लिए. प्राण किसे प्रिय नहीं होते, हमारे भी और तुम्हारे भी.

एक बात सुनाता हूं साहेब! हम बियाबान जंगल में ट्रेनिंग ले रहे थे. जिले का कलक्टर हमारे चीफ़ से मिलना चाहता था. सरकार को जंगल के रास्ते चौड़ी सड़क बनानी थी. कलक्टर को इत्तला दी गयी कि वह मोटर गाड़ी से गौरी चौक तक आये और वहां से गाड़ी लौटा दे. उसे वहां से अकेले दो किलोमीटर जंगल में पैदल जाना था. पहचान हेतु उसे एक दर्जन केला, लाल गुलाब और लाल रुमाल साथ रखना था. उसके पास ‘नाको’ बोले तो उसे नाको बोलना है. लाल रुमाल, फूल और केला दिखाये तो उसे भी दिखाना है. फिर वह ठिकाने पर उसके साथ पहुंच पायेगा.

उस काम में नायक के साथ मैं भी गया था. कलक्टर सादा कुर्ता पायजामे में था. हमें उससे कोड शब्द के सिवा कुछ बात नहीं करनी थी. उसके आगे नायक था पीछे मैं. वह चुपचाप हमारे साथ चलता रहा. ठिकाने पर कलक्टर ने अपनी बात रखी. जंगल क्षेत्र के विकास के लिए सड़क, शिक्षा और सामाजिकता कितनी अहम् है, उसने दलील दी. चीफ़ ने उसकी बात काटते हुए कहा — ‘सुनो कलक्टर! तुम्हारी दलील अपनी जगह तलाशती है. यह जंगल हमारी देह है. तुम्हारी सड़क हमारी छाती को छेदेगी, फाड़ेगी और हमारे कलेजे और अंतड़ी को लहलुहान कर देगी. यहां से सड़क गुज़ार कर तुम हमारा भेद जानोगे. हम नंगे हो जायेंगे. फिर हमारी सभ्यता छिनेगी. हमारे लोग तुम्हारी समझदारी से बहक जायेंगे. उनमें छल प्रपंच का समावेश होगा और वे सब असाधु हो जायेंगे. दंतवाड़ा में ‘सलमा जुडुम’, क्या है, तुम खुद समझ सकते हो, कलक्टर!’

‘ठीक है भाई! सड़क का प्रस्ताव रुक जायेगा. आप लोग चाहोगे तभी सड़क बनेगी. आप मानोगे तभी बात आगे जायेगी. हम ख़िलाफ़त में नहीं, भाईबंदी के राह पर ही चलेंगे. परंतु एक बात है कि सरकार जो पैसा देना चाहता है उसे हम नहीं ले पायेंगे.’ कलक्टर ने कहा.

‘सुनो कलक्टर!’ सरदार ने कहा. ‘सरकार का पैसा अफ़सर और ठेकेदार लूटता है, और वह लुटाना चाहती है. यह ठेका चोर चांडाल को मिलता है. मिट्टी काटने का काम मशीन से होता है. हमारे आदमी वह काम नहीं कर सकते क्या! तुम्हारे अफ़सर और ठेकेदार जंगल के आदिवासियों का शोषण करते हैं, उनकी बहू-बेटियों से

छेड़छाड़ करते हैं. रुपयों का लालच देते हैं. तो हम उनकी जान लेते हैं. सौ चोट सोनार की तो एक चोट लोहार की. हम क्या ग़लत करते हैं कलक्टर, कुछ ग़लत नहीं करते.’

‘हां भाई! इज़्जत तो सबकी बराबर है, जैसी मेरी वैसी तेरी. मैं आपकी बात समझ सकता हूँ. आपके सहयोग और समझ से ही कोई काम होगा. सड़क योजना को थोपा नहीं जायेगा. मशीन से मिट्टी की कटाई पर रोक लगेगी. स्थानीय लोग ही काम करेंगे. इस योजना को आप लोग अपने में समझबूझ लो, फिर जैसा निर्णय करोगे वैसा होगा. मैं इस जिले का इंचार्ज हूँ और मुझे यहां के आदमी से मतलब है उनके हित से मतलब है. आप लोग ही हमारे हित मित हो, सरदार.’ कलक्टर ने कहा.

‘ठीक है हम आपस में बात करेंगे.’ चीफ़ ने कहा, कलक्टर से सरदार की मुलाक़ात के बाद हम उसे फिर गौरी चौक पहुंचा दिये. क्या कहीं साहेब उतना बड़ा अफ़सर सरदार के सामने भीगी बिल्ली बना था. वह भी भयाक्रांत था. सरदार का मुंह देखकर ही वह अपना मुंह खोलता था. हाड़ मांस का शरीर है, समझौता तो करेगा ही. संगठन का सरदार जंगल का शेर था, कमरे के अंदर का चूहा नहीं साहेब!’

‘तुम अपनी बात कहो. तुम तो संगठन में थे! फिर यहां कैसे आये?’ मैंने पूछा.

‘का कहीं साहेब! बड़ी लंबी बात है, संगठन में एक लड़की थी, नेऊरी नाम था उसका. बड़ी सुंदर थी वह. कमांडर उसे अपने साथ रखता था. मेरे अंदर पता नहीं का बात थी जो उसकी नज़र मेरे से मिलने लगी. मैं भी टूटा-हारा रहता था, ऐसे में थोड़ी मानवीय छान्ह जीवन जीने के लिए ज़रूरी है साहेब, बहुत ज़रूरी.’

उसकी बातों को सही क्रार देते हुए मैंने सिर को उपर नीचे करते हुए अपना समर्थन दिया. वह कहता गया.

‘नेऊरी हमसे उमर में बड़ी थी. एक दिन सूनेपन का फ़ायदा लेकर उसने मुझे अपने आगोश में पकड़ लिया. वह लड़की है, उसे लाज ना है. मैं लड़का हूँ. लजाता हूँ, यही मेरे लिए लज्जा की बात है, ऐसा उसने कहा. तब मैंने लाज तोड़ दी, और उससे लिपट गया. मैं जानवर सा हो गया. नेऊरी भी तैयार थी. उसने कोई ना-नुकुर ना की. मुझे भी अच्छा ही लगा. परंतु का कहीं साहेब! नेऊरी गर्भवती हो गयी, ऐसा उसे एक माह के बाद महसूस हुआ. उसका

शरीर उभरने लगा. तब उसने मुझे वहां से भागने को कहा, वरना कमांडर हम दोनों को छः इंच छोटा करा देता. कमांडर के सारे अवगुण पर उसका एक गुण भारी पड़ता था. वह बात और लंगोट का पक्का था. लंगोट कमज़ोर होता तो वह उस संगठन को नहीं चला पाता.’

सामगुली फिर ख़ामोश हो गया. तीन टंकी मोड़ से रिक्शा मुड़ा तो मैं अपना सामान संभालने लगा. पत्नी उसकी बातें सुन रही थी. उसे भी जिज्ञासा हुई. इस बार सामगुली से उसने पूछा — ‘क्या हुआ फिर उसके बाद!’

‘का होगा मैडम! उसके बाद. हम अपने कुकृत्य से भयभीत थे. पाप अब खुलने वाला था और हम मौत के करीब थे. मैं अपना खेमा लेकर वहां से भाग निकला, नेऊरी को लिये दिये. अपने बाबू के पास जाता तो वहां भी खतरा था, सो मुंह में कालिख़ पोत मैं मुंबई आ गया. यहां कौन किसको जानता है, अथाह सागर है यहां. बड़े-बड़े मगरमच्छ भी हैं और छोटे-छोटे कीड़े-मकोड़े भी. सबको पोसता है यह. सबको अपनी-अपनी पड़ी है, सुबह चार बजे से रात बारह बजे तक की व्यस्तता है यहां.

बहनोई से फ़ोन पर हमने बात की, बाबू के बारे में. कमांडर तीसरे दिन बाबू के पास गया था, उसने उससे कोई बात ना की. माय बीमार थी. पर उससे उसको क्या? वह वहां सज़ा देने ही गया था, मेरे गुनाहों की. कमांडर के साथ खूंखार हत्यारे थे. कमांडर ने बाबू को मेरे अपराध की बात बतायी, फिर उसने मेरी छोटी बहन को गिरफ़्तार किया, संगठन में नेऊरी की जगह देने के लिए.

बाबू रोता रहा, कमांडर ने उसे समझाया कि वह न्याय करता है. मेरी बहन उसके काम की चीज़ है. वह उसे ले जायेगा. राज भोगेगी वह, संगठन में और मेरे किये की सजा भी.’

‘फिर क्या हुआ सामगुली.’ रिक्शा ठिकाने पर रुकते हुए मैंने पूछा.

‘फिर कमांडर ने मेरे छोटे भाई, मां और बाबू का सिर काट डाला और मेरा घर ध्वस्त कर दिया.’ बायें हाथ को सर पर रखते हुए उसने कहा.

❖ ८३० बी, नेऊरा कालोनी,  
खगोल, पटना-८०११०५  
मो.:९४३०००९८२१



गज़लें

सतपाल 'स्नेही'

१.

चाहे अशकों का कारवां रखना ।  
 एक अपना मगर जहां रखना ॥  
 प्यार का शब्द प्यार की खातिर ।  
 अपने होठों के दरमियां रखना ॥  
 आ भी सकती हैं खुशबुएं उड़कर ।  
 तू हथेली पे तितलियां रखना ॥  
 खुद को वो माहताब ना समझे ।  
 साथ दीये के आंधियां रखना ॥  
 देख कर, धूप जल भी सकती है ।  
 छांव से थोड़ी दूरियां रखना ॥  
 हौंसला लौट भी तो सकता है ।  
 अपने हिस्से का आसमां रखना ॥

२.

मैं कभी इस दर कभी उस दर रहा हूँ,  
 मील का या राह का पत्थर रहा हूँ ।  
 दास्तां इक फूल की कुछ याद सी है,  
 वरना कांटों का ही सौदागर रहा हूँ ।  
 हर लम्हा मैंने जीया है आंसुओं को,  
 गम का शायद इसलिए रहबर रहा हूँ ।  
 कल जुबां से कुछ हकीकत रिस गयी थी,  
 आज हरजाना उसी का भर रहा हूँ ।  
 जब कभी जज्बात आ पहुंचे जुबां पर,  
 लोग ये समझे कि मैं शायर रहा हूँ ।  
 मौत ये मुझको डराये भी तो कैसे,  
 मैं इसी का तो सदा दिलबर रहा हूँ ।

१२६, गली नं.८, विवेकानंद नगर, बहादुरगढ़-१२४५०७ (हरियाणा). मो.९४१६५३५६९६

: प्राप्ति-स्वीकार :

पनाह (उपन्यास) : डॉ. मंजु दलाल, राज पब्लिशिंग हाउस, ९/५१२३, पुराना सीलमपुर, दिल्ली-११००३१. मू. ५०० रु.  
 सूर्यबाला : संकलित कहानियां (कहानी सं.) : सूर्यबाला, नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया, ३३७, वसंत कुंज, नयी दिल्ली-११००७०. मू. ९५ रु.  
 डोगरी की चुनी हुई कहानियां (क. सं.) : सं. कमलेश्वर, राजपाल एंड सन्स, मदरसा रोड, कश्मीरी गेट, दिल्ली-११०००६. मू. ३२५ रु.  
 हे राम ! (क. सं.) : सुशांत सुप्रिय, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, ३३७, चौड़ा रास्ता, जयपुर-३०२००३. मू. २०० रु.  
 कदंब की छांव (क. सं.) : कमल कपूर, राजदीप प्रकाशन, मारुति कंपीटेंट स्ट्रीट, महारौली, नयी दिल्ली-११००३०. मू. २५० रु.  
 डोर (ल. क. सं.) : पंकज शर्मा, शुभतारिका प्रकाशन, ए-४७, शास्त्री कॉलोनी, अंबाला छावनी -१३३००१. मू. २०० रु. (स.)  
 १४ काव्य-रश्मियां (कविता सं.) : सं. सागर त्रिपाठी, पृथ्वी प्रकाशन, एमसीसी लेन, काला घोड़ा, फोर्ट, मुंबई-४०००२३. मू. २०० रु.  
 किससे क्या कुछ बात करें (क. सं.) : प्रदीप "नवीन", साहित्य संस्थान, उत्तरांचल कॉलोनी, गाजियाबाद-२०११०२. मू. ४०० रु.  
 तृष्णा (कविता सं.) : रीताराम, अनंग प्रकाशन, बी-१०७/१, गली मंदिर वाली, उत्तरी घोंडा, दिल्ली-११००५३. मू. १५० रु.  
 शब्दों की लाश में (क. सं.) : मुकेश कुमार तिवारी, हिंद युग्म, १जिया सराय, हौज खास, नयी दिल्ली-११००१६. मू. २५० रु.  
 रेहड़ी (क. सं.) : पंकज रामेंडु, हिंद युग्म, १जिया सराय, हौज खास, नयी दिल्ली-११००१६. मू. २०० रु.  
 रेवा पार से (क. सं.) : स्वाति पांडे नलावडे, हिंद युग्म, १जिया सराय, हौज खास, नयी दिल्ली-११००१६. मू. १५० रु.  
 राम नाम सत्य है ! (क. सं.) : डॉ. शोभनाथ यादव, पंकज प्रकाशन, पंकज क्लासेज, जोगेश्वरी (पू), मुंबई-४०००६०. मू. १०० रु.  
 पांचवां मौसम (क. सं.) : शिल्पा सोनटक्के, शिवानी प्रिंटर्स, ३४ न्यू माताजी बिल्डिंग, एन एस रोड, मुलुंड, मुंबई-४०००८१. मू. १५० रु.  
 आकाश-गंगा (क. सं.) : अनजान, प्र. सुषमा श्रीवास्तव, कामायनी, १४३/२ बलिहार रोड, मोरहाबादी, रांची-८३४००८. मू. १२५ रु.  
 गंगा-सागर (क. सं.) : अनजान, प्र. सुषमा श्रीवास्तव, कामायनी, १४३/२ बलिहार रोड, मोरहाबादी, रांची-८३४००८. मू. १२५ रु.  
 महफ़िल शायरी की (ग. सं.) : जितेंद्र राणा, साई भवन संस्था, न्यू गोल्डन नेस्ट फेज-१४, भयंदर (पू.)-४०११०५. मू. १४५ रु.  
 दुनिया माया जाल (दोहा) : सिराज देहलवी, गुलिस्तां पब्लिकेशन्स, ६७ मौलाना शौकत अली स्ट्रीट, कोलकाता-७०००७३. मू. १५० रु.  
 धनक रंग (रूबाइयां) : सिराज देहलवी, गुलिस्तां पब्लिकेशन्स, ६७ मौलाना शौकत अली स्ट्रीट, कोलकाता-७०००७३. मू. १५० रु.  
 बर्फ की वादी में (माहीये) : सिराज देहलवी, गुलिस्तां पब्लिकेशन्स, ६७ मौलाना शौकत अली स्ट्रीट, कोलकाता-७०००७३. मू. १५० रु.  
 यादों का जंगल (हाइकू) : सिराज देहलवी, गुलिस्तां पब्लिकेशन्स, ६७ मौलाना शौकत अली स्ट्रीट, कोलकाता-७०००७३. मू. १५० रु.



आमने-सामने

## दुःख ही जीवन की कथा रही...

डॉ. वासुदेव

बहुत बार होता है कि पाठकों से लेखक केवल अपनी रचनाओं के माध्यम से ही बात नहीं करना चाहता बल्कि सीधे पाठक के सामने अपने मन की गांठ खोलना चाहता है, लेखक और पाठक के बीच की दीवार खत्म करने का प्रयास है यह स्तंभ, 'आमने-सामने'. अब तक मिथिलेश्वर, बलराम, (स्व.) प्रो. कृष्ण कमलेश, कृष्ण कुमार चंचल, संजीव, (स्व.) सुनील कौशिश, डॉ. बटरोही, राजेश जैन, डॉ. अब्दुल बिस्मिल्लाह, कुंदन सिंह परिहार, अवधेश श्रीवास्तव, श्रीनाथ, राम सुरेश, विजय, विकेश निझावन, नरेंद्र निर्मोही, पुन्नी सिंह, श्याम गोविंद, प्रबोध कुमार गोविल, स्वयं प्रकाश, मणिका मोहिनी, राजकुमार गौतम, डॉ. रमेश उपाध्याय, सिद्धेश, डॉ. हरिमोहन, डॉ. दामोदर खड़से, रमेश नीलकमल, चंद्रमोहन प्रधान, डॉ. अरविंद, (स्व.) सुमन सरीन, डॉ. फूलचंद मानव, मैत्रेयी पुष्पा, तेजेंद्र शर्मा, हरीश पाठक, जितेन ठाकुर, अशोक 'अंजुम', राजेंद्र आहुति, आलोक भट्टाचार्य, डॉ. रूपसिंह चंदेल, दिनेश चंद्र दुबे, डॉ. कृष्णा अग्रिहोत्री, जयनंदन, सत्यप्रकाश, संतोष श्रीवास्तव, उषा भटनागर, प्रमिला वर्मा, डॉ. गिरीश चंद्र श्रीवास्तव, प्रो. मृत्युंजय उपाध्याय, सुधा अरोड़ा, पं. किरण मिश्र, डॉ. तेज सिंह, डॉ. देवेन्द्र सिंह, राकेश कुमार सिंह, रमेश कपूर, डॉ. उर्मिला शिरीष, रामनाथ शिवेंद्र, अलका अग्रवाल सिगतिया, संजीव निगम, सूरज प्रकाश, रामदेव सिंह, मंगला रामचंद्रन, प्रकाश श्रीवास्तव, सलाम बिन रजाक, मदन मोहन 'उपेंद्र', भोला पंडित 'प्रणयी', महावीर रवाल्ता, गोवर्धन यादव, डॉ. विद्याभूषण, नूर मुहम्मद 'नूर', डॉ. तारिक असलम 'तस्नीम', सुरेंद्र रघुवंशी, राजेंद्र वर्मा, डॉ. सेराज खान 'बातिश', डॉ. शिव ओम 'अंबर', कृष्ण सुकुमार, सुभाष नीरव, हस्तीमल 'हस्ती', कपिल कुमार, नरेंद्र कौर छाबड़ा, आचार्य ओम प्रकाश मिश्र 'कंचन', कुंवर प्रेमिल, डॉ. दिनेश पाठक 'शशि', डॉ. स्वाति तिवारी, डॉ. किशोर काबरा, मुकेश शर्मा, डॉ. निरुपमा राय, सैली बलजीत, पलाश विश्वास, डॉ. रमाकांत शर्मा और हितेश व्यास से आपका आमना-सामना हो चुका है. इस अंक में प्रस्तुत है डॉ. वासुदेव की आत्मरचना.

गांव चकमहमद, पत्रालय देसरी, जिला वैशाली (हाजीपुर), राज्य बिहार. उत्तर पूरब में घाघरा नदी जो गर्मी में सूख जाती है, पश्चिम में सड़क और दक्षिण में रेल लाइन. इसी गांव के एक गरीब किसान इंद्रदेव सिंह के घर १६ मार्च १९५२ को प्रथम पुत्र के रूप में मेरा जन्म हुआ था, दो छोटे भाई थे और एक छोटी बहन.

ज़मीन कम थी मात्र एक सौ पैंतीस डिसमल के आस-पास उसी के ऊपर बार भी और धनहर भी. साल-भर का अनाज नहीं जुट पाता था. इसलिए दादा के समय से ही घर के लोग आसाम जाते रहते थे, कमाने के लिए. दादाजी सरदार थे, मोटिया का काम करने वाले मजदूरों के सरदार पिताजी जहाजघाट में मुंशी थे. उन दिनों गांव में पढ़ने-लिखने का रिवाज कम था. दादा तीसरी पास थे और पिताजी सातवीं. चाचाजी तो अंगूठा छाप थे. पिताजी अंग्रेज़ी भी लिख-पढ़ लेते थे. इसीलिए उन्हें जहाजघाट में मुंशी-गिरी मिली थी. दादाजी बताते थे कि शुरू-शुरू में वे पैदल ही महीना दिनों में सिलचर पहुंचते थे. सत्तू, चिउरा, भुंजा यही सब साथ लेकर जाते थे और पैदल ही वापस भी होते थे साल-दो साल के बाद. लोग समूह में

निकलते थे, दस-पंद्रह की संख्या में. पर पिताजी के समय में रेल गाड़ी चलने लगी थी. यही कारण था कि वह सातवीं की पढ़ाई बीच में ही छोड़कर दादा के साथ सिलचर भाग निकले थे.

गांव में स्कूल नहीं था. दूसरे गांव के स्कूल में पढ़ने के लिए जाना पड़ता था. पर घाघरा नदी पर पुल नहीं था. रेल लाइन से होकर मां-बाप अपने बच्चे को स्कूल भेजने से कतराते थे. हमारे गांव के पश्चिमी छोर पर एक राजपुताना गांव था. पर उस गांव में लोग अपने बच्चे को नहीं भेजते थे क्योंकि राजपुताना के बच्चे कुरमियान के बच्चों को प्रायः मारते-पीटते रहते थे.

चाचाजी के तीन लड़के थे. पर केवल बड़े भैया पढ़ते थे. तब वे पांचवीं में पढ़ते थे और मैं पहली में. उन्हीं के साथ मां मुझे भी उस स्कूल में भेज देती थी. घड़ी नहीं थी. ज़मीन में गढ़ा बने हुए थे. घर के छप्पर की छाया जब वहां पहुंच जाती थी तो हम दोनों स्कूल को भागते थे. बस, साथ में केवल एक बोरा रहता था बैठने के लिए. झोले में क़िताब-कॉपी, स्लेट-पेंसिल कुछ भी नहीं. सुबह स्कूल पहुंचते ही सबसे पहले बोरा बिछाकर सामने की

१६ मार्च १९५२ (वैशाली, बिहार), सम्. स., पी.सच. डी. लिट



**प्रकाशन** : अब तक देश के विभिन्न स्तरीय पत्र-पत्रिकाओं में १०० से ज़्यादा कहानियां प्रकाशित. पहली कहानी पटना से प्रकाशित 'ज्योत्सना' के जुलाई ८१ अंक में. 'इस जंगल के लोग', 'नयी बहू की आंखें', 'पुंश्रुली', 'दहशतगर्द', 'शामगाह', 'महापाश', कहानी संग्रह. 'सुबह के इंतज़ार में' व 'निगोड़ी' दोनों उपन्यास, 'महापाश' एवं 'धर्मोनास्ति' का दूरदर्शन रांची से नाट्य रूपांतर प्रसारित. 'अरण्यगाथा', 'गांव गंध' और 'बहुनिया' उपन्यास तथा 'जीवन की गोधूलि' में तथा 'और वैष्णव फिसल गया' कहानी संग्रह प्रकाशन की यात्रा पर.

**पुरस्कार व सम्मान** : अनेक पुरस्कार व सम्मान प्राप्त.

**संप्रति** : मुख्य महाप्रबंधक दूरसंचार, बीएसएनएल, रांची के कार्यालय में सहायक निदेशक (राजभाषा) के पद पर सेवारत तथा विभागीय गृह पत्रिका 'झारखंड संचार' का संपादन.

ज़मीन को गोबर से लीपना पड़ता था. जब तक प्रार्थना होती और हम लोग अपने-अपने बोरे पर आ बैठते तब तक वह जगह सूख जाती थी. फिर तो उसी सूखी ज़मीन पर कोई जानकार छात्र गोरी मिट्टी से 'अ आ इ ई उ ऊ' लिख देता था. मैं दिनभर उसी की नक़ल उतारता रहता और याद करता रहता था. इस तरह साल पूरा हो गया था. इस बीच मैंने हिंदी-वर्णमाला, बारह खड़ी, सौ तक गिनती और एक से बीस तक का पहाड़ा याद कर लिया था. वार्षिक परीक्षा देकर दूसरी कक्षा में चला गया था.

पर एक दिन उस वर्ग शिक्षक ने जूता पहने पांव से ही मुझे कसके मारा. जूते के सोल से मेरा होंठ कट गया था और खून निकल आया था. बगल के सवर्ण बच्चे खूब हंसे थे. उन पर मुझे गुस्सा भी आ गया था. असल में बातें वे सब कर रहे थे और मार मुझे पड़ी थी. इतने पर भी जब उस वर्ग शिक्षक का गुस्सा कम नहीं हुआ था, तब उसने फिर से मुझे पहली कक्षा में बैठने भेज दिया था. मेरा अपराध सिर्फ़ इतना था कि मैं साल के अंदर ही पहली कक्षा पास कर दूसरी में आ गया था और पिछड़ी जात का था.

यह तो बाद में, जब एक दिन डिप्टी साहब आये और उन्होंने पहली कक्षा के लड़कों से पूछा था, 'इक्कीस का पहाड़ा जो सुना सकता है, वह हाथ उठाये.' मैंने अपना हाथ उठा दिया था और पहाड़ा भी सुना दिया था. उन्होंने उसी समय वर्ग-शिक्षक से कहा था, 'इसे दूसरी

कक्षा में भेज दो...'

परंतु दूसरी कक्षा के वर्ग शिक्षक भी तो वे ही पंडित जी थे. मैंने दूसरे दिन से स्कूल जाना ही बंद कर दिया. फिर तो एक दिन मां ने गांव के एक चाचा के साथ देसरी की प्राथमिक पाठशाला में भेज दिया था. उसी दिन उन्होंने पहली कक्षा में मेरा नाम भी लिखा दिया था. अंदाज से उन्होंने मेरी जन्म-तिथि १६ मार्च १९५२ लिखवा दी तब. मैं छः साल का था. मेरी पढ़ाई की शुरुआत यहीं से हुई थी. यहां पढ़ाई भी अच्छी होती थी और दूसरे लड़के भी थे. पढ़ने में मन लगता था.

बाबू जी बराबर गांव में ही रहते थे. चूंकि दादा जी थक गये थे, घर पर ही रहने लगे थे. सरदारी भी तो चली गयी थी. पिताजी ने कुछ धन खेती अरज ली थी. दस कड़ा के आस पास. खाने-भर अनाज हो जाता था. पर मेहनत बहुत करनी पड़ती थी. थका-मांदा रहने पर भी वह मुझे भोर में पढ़ने के लिए उठा देते थे. न चाहते हुए भी उसी समय लालटेन जलाकर पढ़ना पड़ जाता था. क्लास में फर्स्ट आने की शुरुआत यहीं से हुई थी.

क्लास मॉनिटर मैं ही था. दिवाल के उस पार कन्या पाठशाला थी, सातवीं कक्षा तक. एसेसमेंट के नंबर जोड़ने और प्रतिशत निकालने के लिए मुझे वहां जाना पड़ता था. अच्छा लगता था. पढ़ाई में बेहतर करने की प्रेरणा भी मिलती थी. उनमें से कुछ छात्राएं तो मेरी दोस्त बन गयी थीं. किंतु यहां पांचवीं तक ही कक्षाएं थीं. फिर तो पास के हाई

स्कूल में जाना पड़ गया था. कन्या पाठशाला की इन लड़कियों से मुलाकात तो आठवीं कक्षा में ही जाकर हुई थी.

१९६५ का समय था. तीन सेक्सन थे आठवीं में. अपने स्कूल के बच्चे अनुभाग 'ए' में थे जबकि दूसरे स्कूल से आनेवाले बच्चे अनुभाग 'बी' और 'सी' में. एक से बढ़कर एक लड़के थे. वजीफ़ा लेने वाले भी. विज्ञान शिक्षक की कमी थी. इसलिए विज्ञान विषयों की कक्षा लेने हमें दोनों अनुभागों में भी जाना पड़ता था. शिक्षक तो तीनों अनुभागों को खिड़की से देखते रहते थे. तब कक्षा में पढ़ाते समय हम लोग बहुत सतर्क रहते थे. इस तरह हम लोगों की तैयारी होती रहती थी. जब आठवीं का रिजल्ट निकला था तो मुझे ६४८ अंक मिले थे, जबकि दूसरे और तीसरे स्थान पर रहनेवाले को क्रमशः ६१९ और ६१६. रिजल्ट के बाद प्रधानाध्यापक मुझे खोज रहे थे. पर उस दिन तो मैं ननिहाल गया हुआ था नवीं कक्षा की पुस्तकें लाने.

स्कूल में एक छोटा-सा पुस्तकालय था. अच्छी-अच्छी किताबें थीं वहां. मुझे लाइब्रेरियन बना दिया गया था, छुट्टी के समय चालिस मिनट के लिए मुझे वहां ड्यूटी करना पड़ता था. खूब पढ़ता था मैं वहां. पुस्तकें भी घर ले जाया करता था. प्रसाद, प्रेमचंद, दिनकर, रेणु, शरतचंद्र, टैगोर आदि को मैंने वहीं से जाना था. कुछ-कुछ लिखने भी लगा था.

कहते हैं, जीवन में सुख-दुःख धूप-छांह की तरह आते रहते हैं. सिलचर का जहाज घाट बंद हो गया था. पिताजी की नौकरी जाती रही. गांव आकर वे खेती में लग गये. फलतः मुझे भी उनके साथ गृहस्थी का जुआ अपने कंधे पर लेना पड़ा था. हालांकि एक ईंट-भट्टे में फिर से उन्हें मुंशी की नौकरी मिल गयी थी. पर वह मज़ा नहीं था. बंधी तनख्वाह, वह भी कम. दाल-रोटी भर. वह हर माह पैसे तो भेजते थे, पर इससे घर का खर्च नहीं चल पाता था. दादाजी गुजर गये थे. गृहस्थी का सारा बोझा मेरे सिर आ गया. किसी न किसी तरह उसका असर मेरी पढ़ाई पर भी पड़ने लगा था. १९६७-६८ में जब बिहार की स्थिति अस्त-व्यस्त थी, मैट्रिक का टेस्ट देकर मैं भी आसाम चला गया था. कुछ दिनों तक भटकने के बाद मुझे भी मुंशी की नौकरी मिल गयी.

हालांकि मैं कमाने नहीं गया था सिलचर, बल्कि मैं तो यह देखने गया था कि आखिर ऐसी कौन-सी चीज़ है आसाम में जहां हमारे पूर्वज महीना दिनों तक पैदल चलकर पहुंचते थे और आज भी गांव-घर के लोग वहां जा ही रहे हैं. यह तो वहां जाने पर पता चला था कि वहां मज़दूर वाला काम है और देह-तोड़ मेहनत कर, दो पैसा उगाहते हैं लोग. जितनी मेहनत थी, उतनी कमाई भी नहीं थी. ठेला खींचना, रिक्शा चलाना, मोटिया-गिरी करना, ईंट-भट्टे में ईंट ढोना. साल डेढ़ साल में ही बीमार पड़ जाते थे, फिर गांव लौट जाते थे. ...उन्हीं दिनों पिताजी ने १० डिसेंबर का एक धनहर प्लॉट बेचने की बात पक्की कर ली थी. ज़मीन बेचने की शुरुआत वहीं से हुई थी. मैं गांव लौट आया था. बोर्ड की परीक्षा जो देनी थी.

प्रिलिमरी में ५०४ नंबर आये थे. मेरे नाम के सामने लाल से राइट का चिन्ह लगा था. मतलब था कि मैं बोर्ड में फर्स्ट क्लास ला सकता हूं. प्रधानाध्यापक ने मुझे स्कूल का एक कमरा दे दिया था और वहीं रहकर बोर्ड की तैयारी करने को कहा था. जबकि मुझे तो नौका-विहार करना, चौर में नाव पर चढ़कर चिड़कियों का शिकार करना, तालाब में खिले भेट-मास, कमल, काले बादल भरे आकाश में बगुलों की पंक्ति आदि को देखकर कविता करने और गांव की गरीबी को देखकर कहानी लिखने का खूब मन करता था. पर मास्टर जी स्कूल से बाहर जाने देते ही नहीं थे. मैट्रिक की परीक्षा तो मैंने किसी तरह दे दी थी, पर रसायन शास्त्र और अंग्रेज़ी का पेपर गड़बड़ा गया था. फिर भी ६०९ नंबर आये थे.

१९६८ का समय था. परीक्षा देने के दूसरे ही दिन से दवा की एक दुकान में काम करने लगा. जब रिजल्ट निकला था, तो गांव के ही डॉक्टर अपने बच्चों को पढ़ाने के लिए मुझे साथ ले गये थे. आशा बंधायी भी थी उन्होंने कि वे मेरा नामांकन वहां के एक कॉलेज में करा देंगे. करा भी दिया था उन्होंने. पर वहां कॉलेज कहां था? वह तो मात्र फ़ॉर्म और पैसा क्लेक्शन सेंटर था. पर मैं भी क्या करता? पढ़ाई छूट जाने से तो अच्छा था कि कॉलेज नामक संस्था से चिपक गया था. नहीं तो कॉलेज में पढ़ने का सपना तो कब का चूर हो गया था. परीक्षा दी. द्वितीय श्रेणी मुश्किल से आ पायी थी. मैं फिर से गांव आ गया था अपनी क्रिस्मत पर रोने. दरअसल गांव के ही मेरे एक भाई थे, मेरे बड़े

हितैषी. डिप्लोमा होल्डर थे. बेकार थे. डॉक्टर साहब की दूसरी पत्नी ने उन्हें भी वहीं बुला लिया था. वे तो सुई लगाने और दवा देने का काम भी कर देते थे. पर मैं तो केवल बच्चों को पढ़ाता था और स्वयं पढ़ता था. वापस आ गया था.

मैंने आर. एन. कॉलेज में नामांकन करा लिया था. घर से ही आना-जाना करता था. दरअसल, यहां आकर ही पढ़ाई का माहौल मिला, पढ़ाई मिली, प्राध्यापक मिले, उनका स्नेह-प्यार मिला, पुस्तकालय मिला, पुस्तकें मिलीं. पर नहीं मिला तो आर्थिक अवलंब जिसके लिए मैं लालायित था. नियति के खेल को देखने-समझने का शऊर तो मुझ में आ ही गया था. पर कॉलेज में था इसलिए सब कुछ भूल जाना चाहता था. गर्मी में ज्यादा परेशानी होती थी. सुबह के समय कोई गाड़ी नहीं थी.

१० कि.मी. पैदल चलकर चेचर में बस पकड़नी पड़ती थी. फिर हाजीपुर पहुंचकर वहां से ५ कि. मी. पैदल चलकर कॉलेज पहुंचना पड़ता था. आते-जाते ३०कि.मी. रोज़. ट्रेन में तो बिना टिकट भी चल जाता था, पर बस में पैसा देना पड़ता था. इसलिए मुझे बस की छत पर बैठना पड़ता था. जो भी पैसे देते थे, खलासी भाई रख लेता था.

पर कभी-कभी लगता था कि पढ़ाई छोड़कर कहीं काम में जुट जाऊं. मेरा छोटा भाई और बहन दूसरे के खेत से रहर की छिन्मी तोड़कर और उसे चुक्का में सिझाकर नमक मिर्च के साथ चटकार ले-लेकर खाते थे, तो मेरी रुलाई फूट पड़ती थी. मेरी मां सुंदर थीं. नाम भी था सुरती. उसकी देह पर मैंने कभी अपना खरीदा नया कपड़ा नहीं देखा. नानी, मौसी, बुआ उसे कपड़े देती रहती थीं. मैं सब समझता, पर कुछ कर नहीं कर पाता था. हां पढ़ाई के प्रति उदासीनता ज़रूर बढ़ती जा रही थी.

एक दिन एक ग्राहक आया, रजपुताना का. चौर में हरबाही करनी थी. साढ़े तीन कट्टा खेत. दो बार जोत, दो बार हेंगा. दो बज गये थे खेत में ही. जीवन का वह पहला धंधा था. १५ रुपये मिले थे. दस रुपये मेरा, पांच रुपये अधरिया का. कभी-कभी ये रुपये ही मेरे परिवार का आर्थिक संबल होते थे. उस दिन से गांव के हर-बेचवा की सूची में मेरा नाम भी जुड़ गया था. ग्राहक को तो वे ही फांस लेते थे. मेरे यहां तो उसर, बंजर, उखट, ढेलवार आदि खेत का ही ग्राहक आता था. पर क्या करता. विवशता थी.

पैसे के कारण तो कभी-कभी अधरिया के पांच रुपये मैं देता भी नहीं था और वह चूंकि मेरी स्थिति से अवगत थी, मांगती भी नहीं थीं.

मेरे गांव में स्कूल नहीं था. उन्हीं दिनों मैंने अपने बथान में एक स्कूल शुरू किया था. गांव के गरीब बच्चे आते थे और हम तीन-चार लड़के मिलकर दो-ढाई घंटा रोज़ उन्हें पढ़ाते थे. गांव के लोग बहुत खुश थे. मैं भी खुश था कि जैसे बच्चे-बच्चियां जो स्कूल नहीं जा पाते थे, यहां पढ़ने आते थे. बच्चों की संख्या चालीस-पैंतालिस के आस-पास पहुंच गयी थी. बसंत पंचमी से पढ़ाई शुरू हुई थी. किंतु भादो के आते ही गांव में जो बाढ़ आयी थी तो लगातार तीन-तीन बार आती ही रह गयी थी और सब कुछ बहाकर ले गयी थी, पढ़ाई भी.

गांव में पढ़े-लिखे लोगों का घोर संकट था. मार्ग-दर्शन भी कौन करता? एक शिक्षक के सुझाव पर तभी मैट्रिक के प्राप्तांक पर प्राथमिक शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालय में मैंने आवेदन कर दिया था. मेरा नामांकन हो गया था. शिवहर कॉलेज में. पास के गांव के एक भूमिहार परिवार के यहां रहने-खाने की व्यवस्था भी हो गयी थी. बदले में उनके बच्चों को पढ़ा दिया करता था. कम से कम इतनी उम्मीद तो बन ही गयी थी कि देर-सबेर शिक्षक की नौकरी मिल जायेगी. पर इसकी क्या गारंटी है कि बी.ए. करने के बाद कल नौकरी पा ही लूं. सोचा था, किसी तरह दो साल बिता लिये जायें.

पर कोर्स पूरा कहां कर सका. बी. ए. का रिज़ल्ट निकला तो पास कर गया था प्रतिष्ठा के साथ. सेकंड डिवीज़न ही आयी. मैंने ट्रेनिंग छोड़ दी और एल. एस. कॉलेज, मुजफ्फरपुर में एम. ए. में अपना नामांकन करा लिया. वहीं एक छोटा-सा डेरा ले लिया था. सुबह-शाम बच्चों को पढ़ाता था. खर्चा निकल आता था. सोचा, इस तरह एम. ए. तो कर ही लूंगा. इतनी बड़ी दुनिया में कहीं न कहीं छोटी-मोटी नौकरी तो मिल ही जायेगी.

एक दिन पिताजी मुजफ्फरपुर आ धमके थे. एक तो इन्होंने पढ़ाई की जगह नौकरी कर लेने का सुझाव दिया था, दूसरे मेरी शादी का प्रस्ताव लेकर आये थे. वह लड़की देखकर आये थे और मां को पसंद थी. हालांकि मैं एम. ए. करने और नौकरी लग जाने के बाद ही शादी करने के पक्ष में था. पर विधना का विधान.... ६ जनवरी

१९७५ को डाक-तार विभाग में नौकरी लग गयी. इससे पहले ही १६ अगस्त १९७२ को शादी भी हो गयी थी. धर्मशीला मेरी धर्म-पत्नी बनकर मेरे घर आ भी गयी. पर एम. ए. की पढ़ाई ज़रूर छूट गयी. एम. ए. तो मैंने नौकरी करने के बाद रांची विश्वविद्यालय से किया था.

अब तक खेत सब गिरवीं पड़ गये थे. कुछ बिके भी थे. मां के सारे गहने बिक गये थे. यहां तक कि घर के फूल के लोटे, थाली, कटोरा, गिलास आदि भी निकल गये थे. सूद पर तो पैसे थे ही जिसमें दिनों दिन बढ़ोतरी ही होती जा रही थी जिसके लिए मां-पिताजी को ज़लील भी होना पड़ रहा था. ये सब बातें जब मां सुनाती थी तो वह रोने लगती थीं. तब मेरी भी आंखें भर आती थीं. तब पत्नी समझाती. अब आप क्यों चिंता करते हैं? नौकरी तो लग ही गयी है. धीरे-धीरे सब ठीक हो जायेगा.' गौना आने के बाद से उसने इस घर में केवल दुःख ही देखा था, उसे झेला था, ओढ़ा-बिछाया था. लेकिन जब मैं घर से निकलने लगा था, तो एक बार भी वह नहीं बोली थी कि थोड़े दिनों के लिए ही सही नौकरी पर उसे भी साथ ले लें.... मैंने नौकरी ज्वायन कर ली थी. घरवालों के सूखे-उजाड़ जीवन में जैसे बहार आ गयी हो या डूबती नैया को तिनके का सहारा मिल गया हो. किरानी की नौकरी. पगार ही कितनी थी. कुल जमा तीन सौ बीस के लगभग. मैंने सुबह-शाम के लिए ट्यूशन खोज लिये थे. हर माह नब्बे रुपये उधर से भी आ जाते थे. ऑफिस में कुछ ओवर टाइम भी. रांची का खर्च चल जाता था. बचे पैसे हर माह घर भेज देता था.

मैं शुरू में विज्ञान का छात्र था, किंतु साहित्य के प्रति मेरी गहरी रुचि थी. जबकि वही दूर हो गया था. वह तो मुझे मिला एम. ए. में और फिर पी. एच. डी. करते समय. प्रेमचंद, रेणु, चतुरसेन शास्त्री, हजारी प्रसाद द्विवेदी, विजयदान देथा, तारा शंकर वंद्योपाध्याय, शरत चंद्र, चेखव, टॉल्स्टॉय, गोर्की आदि मेरे प्रिय लेखक हैं. 'गोदान', 'मैला आंचल', 'वाणभट्ट की आत्मकथा', 'चरित्र हीन', 'गण देवता', 'वयं रक्षाम', 'वैशाली की नगर वधू', 'ययाति', 'मदर', 'युद्ध और शांति' आदि मेरे प्रिय उपन्यास हैं. 'सद्गति', 'मुबारक बीमारी', 'गमी' (प्रेमचंद), 'उसने कहा था' (गुलेरी), 'विराम चिन्ह', 'गुंडा' (प्रसाद), 'कहीं धूप कहीं छाया' (बेनीपुरी), माता का आंचल, (शिवपूजन सहाय), 'ईसान का जन्म' (राधा कृष्ण), 'दुविधा', 'उपनिषद् का जन्म' (संभवतः

मास्तिव वेंकटेश अयंगर), 'घाट बाबू' (विमल मित्र) आदि कहानियां मेरे लिए आज भी महत्वपूर्ण हैं.

मुझ पर 'रामायण' और 'महाभारत' का विशेष प्रभाव है. राम और कृष्ण ने भगवान होते हुए भी गुरु के आश्रम में जाकर शिक्षा ग्रहण की थी और हर तरह से निपुणता प्राप्त करने के बाद ही गृहस्थ जीवन में प्रवेश किया था. इसलिए इतना कुछ होने पर भी मैंने अपने को साहित्य से अलग नहीं किया था. साहित्य और इतिहास आज भी मेरे प्रिय विषय हैं. विभागीय पुस्तकालय का प्रभारी मैं ही था और हर वर्ष दस हजार के फंड का उपभोग पुस्तकों की खरीद में मैं कर लेता था. मन-पसंद पुस्तकें हर वर्ष पुस्तकालय में आ जाती थीं. रांची में एक बहुत ही समृद्ध पुस्तकालय है — राज्य पुस्तकालय मैंने अपने को उससे जोड़ रखा था. पत्र-पत्रिकाएं तो मिल ही जाती थीं.

मेरी पहली कहानी १९८१ में आयी थी. एक साथ दो कहानियां 'सुबह के इंतजार में' तथा 'रवानगी'. पी-एच. डी. का अब तक मेरा शोध प्रबंध भी पूरा हो गया था और उपाधि भी मिल गयी थी. फिर तो कहानी-लेखन का जो क्रम चला तो मैंने उसे रुकने नहीं दिया. हां, मोटे उपन्यास पर काम करने से उसकी गति अवश्य ही मंद पड़ जाती है जो स्वाभाविक भी है. फिर भी अब तक मेरी सौ से ऊपर कहानियां छप चुकी हैं... 'इस जंगल के लोग' (१९९३), 'नयी बहू की आंखें' (२०००), 'पुश्चली' (२००४), 'दहशतगर्द' (२०११), 'महापाश' (२०१२) और 'शामगाह' (२०११) - छः कहानी संग्रह और 'सुबह के इंतजार में' (२०००) तथा 'निगोड़ी' (२०१०) दो उपन्यास आ चुके हैं. 'रामधारी सिंह दिनकर' (२०१३), परिचयात्मक पुस्तक है जबकि 'कथा में झारखंड' (२०१३), झारखंड के पच्चीस कथाकारों की जनजातीय जीवन एवं संस्कृति से संबंधित कहानियों का संकलन है. तीन उपन्यास 'अरण्यगाथा', 'गांव गंध' एवं 'नयी बहुरिया' पर काम कर रहा हूं. कहानी संग्रह 'जीवन की गोधूलि में' प्रेस में है जबकि और 'वैष्णव फिसल गया' तथा 'अकासी' कहानी संग्रह प्रकाशन की प्रक्रिया में हैं.

अब तक दर्जन भर से अधिक कहानियां पुरस्कृत हो चुकी हैं. बिहार सरकार से दो तथा झारखंड सरकार से एक पुरस्कार मिल चुका है. दैनिक जागरण समूह से सम्मानित हो चुका हूं. लगता है, मैंने आज तक साहित्य में जो कुछ



भी किया है, उसका पुरस्कार-सम्मान मुझे मिल चुका है।

३१ मार्च २०१२ को भारत संचार निगम लिमिटेड, झारखंड के पिरमंडल कार्यालय से सहायक निदेशक के पद से सेवा-निवृत्त भी हो चुका हूँ। संभव है, समयाभाव के कारण जो कार्य अब तक नहीं हो सका था, अब पूरा हो जाये। पर इस मुकाम पर पहुंचने के बाद अफसोस भी है कि जीवन का क्रमिती वक्त तो गुजर गया। छोटी-सी नौकरी जिसके लिए मैं लालायित था, मेरा परिवार लालायित था सब कुछ निगल गयी। अब जो बचा है, उसी को सहेज-समेट कर कुछ बेहतर कर लेना है।

‘वागर्थ’, ‘वर्तमान साहित्य’, ‘आजकल’, ‘कथाक्रम’, ‘नवनीत’, ‘दोआबा’, ‘पांडुलिपि’, ‘वैचारिकी संकलन’, ‘कथानक’, ‘कथाबिंब’, ‘लमही’, ‘कल के लिए’, ‘परिकथा’, ‘जनसत्ता’, ‘हिंदुस्तान’, ‘इस्पात भाषा-भारती’, ‘कुरूक्षेत्र’, ‘समाज कल्याण’, ‘पंजाब केसरी’, ‘लोक गंगा’, ‘द संडे इंडियन’, ‘शुक्रवार’, ‘द पब्लिक एजेंडा’, ‘न्यूज इंडिया’ आदि-आदि कितनों के नाम गिनाये जायें, किंतु ‘हंस’, ‘कथादेश’ और ‘नया ज्ञानोदय’ में छपने योग्य कहानियां मैंने शायद आज तक लिखी ही नहीं। संभव है अब लिखूं...

हालांकि इसका मुझे मलाल भी नहीं है। आलम शाह खान की कहानी संभवतः १९८४ के आसपास ‘धर्मयुग’ में छपी थी इस टिप्पणी के साथ कि ‘धर्मयुग’ में यह उनकी पहली कहानी है जिसका नाम था ‘रोशनी का रथ, अंधेरे के पहिये’ अन्यथा न लिया जाये, तो मैं एक दूसरा उदाहरण देना चाहूंगा। ‘कुरूक्षेत्र’ में मेरी एक कहानी छपी थी, ‘माघ की रात’। पाठक जानते होंगे, उस कहानी पर लगातार छः-सात अंकों तक पाठकीय पत्र छपते रहे थे। बाद में उसी कहानी को श्री सुभाष चंद्र कुशवाहा ने अपने संपादन में निकलने वाले संकलन ‘कथा में गांव’ में लिया था और जिस कहानी पर डॉ.मैनेजर पांडेय और तद्भव के संपादक श्री अखिलेश की बहुत अच्छी टिप्पणियां थीं।

एक कहानी पटना से प्रकाशित दैनिक हिंदुस्तान में छपी थी (१९९६), उस कहानी पर भागलपुर जेल से एक कैदी का लिफाफा बंद पत्र आया था जिसे पढ़कर मैं तो एकदम से हतप्रभ रह गया था। कहानी में न जाने कितनी आग थी, पर उस पत्र में ज़रूर आग थी और बहुत ज्यादा आग थी। मित्रों का तो सुझाव था कि मैं उस पत्र को कहानी संग्रह में कहानी के साथ ही संकलित कर दूं।

हर आदमी अपनी आदत का गुलाम होता है, ऐसा

मैं समझता हूँ। मैं भी हूँ। मेरे अपने संस्कार हैं जिसके अनुसार मैं अपना जीवन जीता हूँ। मैं आज तक किसी संपादक अथवा प्रकाशक के दफ्तर नहीं गया। रचनाएं भेजीं, पसंद आयीं तो छपीं, नहीं पसंद आयीं तो वापस आ गयीं। कोई ज़रूरी नहीं कि आपकी कहानी हर संपादक को पसंद आ जाये। रचनाओं का चयन करते समय संपादक के सामने कई तरह की पाबंदियां होती हैं, विकल्प होते हैं, स्थितियां होती हैं। ... प्रकाशन के लिए भी तभी अपनी पांडुलिपि किसी को भेजता हूँ जब प्रकाशक की स्वीकृति मिल जाती है। अब तक की स्थितियां कुछ ऐसी ही रही हैं। मेरी अब तक १० पुस्तकें आ चुकी हैं। परेशानी कहीं नहीं हुई। हां, संकलन में सारी की सारी कहानियां प्रकाशित रहती हैं।

मैं अपने लिए आत्म-निर्णय का विशेष महत्व देता हूँ। अब इस मुकाम पर पहुंचकर तो और मुझे लगता है, मेरा सबसे बड़ा मार्गदर्शक तो मेरे अंदर बैठा है। ... मैं एक उदाहरण से इस आलेख को विराम देना चाहूंगा। आचार्य रामचंद्र शुक्ल की एक महत्वपूर्ण पुस्तक है, ‘चिंतामणि’ जिसमें एक बढ़िया-सा लेख है – ‘सच्ची वीरता’। उस लेख में एक चित्रकार का जिक्र है जो अपने एक चित्र की दो प्रतियां तैयार करता है। एक दिन वह चित्रकार उस चित्र की एक प्रति को एक चौराहे पर टांग देता है और उसमें एक नोट लगा देता है कि ‘इस चित्र में पाठकों, दर्शकों को जहां-जहां खामियां नज़र आयें, वे वहां-वहां चिन्ह लगा दें।’ कहते हैं, पूरा चित्र चिन्हों से भर गया था।

लेकिन चित्रकार निराश नहीं हुआ। उसने चित्र की दूसरी प्रति उसी चौराहे पर लटका दी और इस बार नोट, ‘इस चित्र में दर्शकों को जहां-जहां खूबियां दिखायी दें, कृपया वहां-वहां चिन्ह लगा दें।’ चित्रकार को तब और आश्चर्य हुआ, जब उसने देखा कि पूरा चित्र चिन्हों से भरा है।

मैंने संक्षेप में अपने अब तक के जीवन का चिट्ठा अति संक्षेप में आप सब के समक्ष रख दिया है। यदि पाठक अपनी प्रतिक्रिया मुझे देने की कृपा करें तो सचमुच मुझे विशेष खुशी होगी। मेरी समझ से लेखक का सबसे बड़ा संबल पाठक ही तो होते हैं। कल भी थे, आज भी हैं और कल भी होंगे।

❦ ‘धर्मशीला कुटीर’

ग्राम-अरसंडे, पत्रा-बोड़ैया,

जिला रांची-८३४२४० (झारखंड),

मो. ९४३०३०३०९४



## सागर-सीपी

# 'नवगीत, गीत का ही उत्तराधिकारी है!'

मधुकर अष्ठाना

[सिकहर से भिनसहरा' (भोजपुरी नवगीत) से 'वक्त आदमखोर', 'न जाने क्या हुआ मन को', 'मुझे भर अस्थियां', 'और कितनी देर', 'बचे नहीं मानस के हंस', 'दर्द जोगिया ठहर गया' तथा 'कुछ तो कीजिए', - नवगीत संग्रहों तथा 'गुलशन से बयाबां' गज़ल संग्रह तथा 'लखनऊ के नवगीतकार' जैसे वृहत प्रतिनिधि संग्रहों के वरिष्ठ रचनाकार श्री मधुकर अष्ठाना प्रो. देवेन्द्र शर्मा 'इंद्र' जी के शब्दों में 'किसी सरोवर की प्रशांत जल-राशि की ऊपरी सतह पर फेंकी गयी एक छोटी-सी कंकड़ी जैसे धीरे-धीरे अपना एक वृहद दायरा बनाती है अर्थात् वर्षाकालीन आकाश के किसी अज्ञात कोने से उठती हुई एक नन्हीं-सी बदली कालांतर में व्योम-मंडल को आच्छादित कर लेती है, कुछ-कुछ वैसी ही लगभग आधी सदी पहले, हिंदी कविता के आसमान पर एक नन्हीं-सी घटा घिरी थी. मधुकर अष्ठाना की - सांवरी, सलोनी गीत-घटा जो आज गीत-नवगीत के बृहत्तर आकाश-मंडल को आच्छादित किये हैं. 'अपने बहुआयामी लेखन के आधार पर वे तीन-तीन विश्वविद्यालयों में एम. फिल. की परीक्षा के लिए अध्येय कवि बन चुके हैं. संप्रति एक विश्वविद्यालय में उनके गीतात्मक अवदान पर पीएच. डी. के लिए अनुसंधान कार्य चल रहा है. 'कथाबिंब' के लिए यशस्वी नवगीतकार श्री मधुकर अष्ठाना की मधु प्रसाद से साक्षात्कार प्रस्तुति.]

● दादा, आपसे पत्राचार एवं गीतों के माध्यम से जुड़ने का सौभाग्य मुझे पहले ही मिल चुका था. आज साक्षात्कार के माध्यम से आपको निकट से जानने का एक और अवसर मिला है. कई वर्षों से हिंदी की विभिन्न प्रतिष्ठित पत्रिकाओं में आपके गीत/नवगीत पढ़ती रही हूँ. सामाजिक सरोकार एवं वर्तमान परिस्थितियों का लेखा-जोखा अपने गीतों के माध्यम से आपने बखूबी छंदबद्ध, लयबद्ध स्वरूप में परोसा है.

वर्तमान में जाने से पहले थोड़ा अतीत के झरोखों में झांक लें. आपके पारिवारिक परिवेश के विषय में जानना चाहूंगी. आपका बचपन, गांव की मीठी यादें, वो नीम की छांह, वो झूला....

मधुजी, आपने सही अनुमान लगाया है कि मेरा जीवन नितांत असहज रहा जो बचपन से आज तक उस असहजता को समेट कर जब मुखरित होता है तो वैसा ही कठोर, खुरदुरा और पीड़ा अन्य गीत का रूप ले लेता है. जब मैं एक वर्ष का था तभी मातृ-वियोग हो गया. संयुक्त परिवार था इसलिए मैं भी कुछ दया और कुछ उपेक्षा की

लहर में पल बढ़ गया. विमाता ने मुझे स्वीकार नहीं किया. आठवें तक गांव से लगभग तीन कि. मी. दूर स्थित विद्यालय में शिक्षा ग्रहण की. तदुपरांत एक चाचा की कृपा से हाई स्कूल डी. ए. वी. कॉलेज, लखनऊ से पूर्ण किया. किंतु उसके पश्चात परिस्थितियों वश मैं पुनः गांव चला गया और इंटर एवं बी. ए. निकटवर्ती नगर जो लगभग १० कि. मी. पर स्थित है, पैदल आ-जा कर शिक्षा ग्रहण करता रहा. केवल परीक्षा के समय ही किसी प्रकार रुकना हो पाता था. परिवार में निर्धनता की भी पराकाष्ठा थी. यदि कभी मैं अनुत्तीर्ण हो गया होता तो संभवतः पढ़ाई समाप्त ही हो जाती. बचपन के अभाव, उपेक्षा, दया, शोषण सभी कुछ मुझे कभी नहीं भूलते. बी. ए. करने के उपरांत नौकरी खोजने का सिलसिला प्रारंभ हुआ और अंततः मलेरिया उन्मूलन योजना में हेल्थ इंस्पेक्टर का पद मिल सका. वर्ष १९६५ और १९६७ में मैंने क्रमशः हिंदी साहित्य एवं समाजशास्त्र विषय में काशी विद्यापीठ, वाराणसी से प्राइवेट परीक्षार्थी के रूप में स्नातकोत्तर परीक्षा उत्तीर्ण की. अध्यापकों की साजिश से मुझे हिंदी में तृतीय स्थान पाकर ही संतोष करना पड़ा. ग्रामीण परिवेश तत्कालीन समय में पवित्र

२७ अक्टूबर १९३९ (आजमगढ़)



**प्रकाशन** : सिकहर से भिनसहरा (भोजपुरी गीत-संग्रह), गुलशन से बयाबां तक (हिंदी गजल संग्रह) पुरस्कृत, वक्रत आदमखोर (नवगीत-संग्रह) पुरस्कृत, न जाने क्या हुआ मन को (शृंगार गीत-नवगीत-संग्रह), मुट्टी भर अस्थियां (नवगीत-संग्रह), और कितनी देर (नवगीत-संग्रह), बचे नहीं मानस के हंस (नवगीत-संग्रह) दर्द जोगिया ठहर गया, (नवगीत-संग्रह).

**प्रकाशनाधीन** : गजल संग्रह, भोजपुरी गीत संग्रह, समीक्षात्मक निबंध-संग्रह.

**लेखन** : लगभग समस्त समकालीन पत्र-पत्रिकाओं में रचनाएं तथा आलेख निरंतर प्रकाशित, दर्जनों स्तरीय सहयोगी संकलनों में गीत नवगीत-संग्रहीत.

**सम्मान** : अनेक संस्थाओं एवं कार्यक्रमों में एकल काव्य पाठ सहित तीन दर्जन साहित्यिक संस्थाओं द्वारा सम्मानित.

**विशेष** : मदुरई वि. वि., लखनऊ वि. वि., कानपुर वि. वि. द्वारा लघु शोध (एम. फिल. ) एवं बुंदेलखंड विश्वविद्यालय झांसी द्वारा दीर्घशोध (पीएच. डी.) जारी है. 'अपरिहार्य' त्रैमासिक के अतिथि संपादक, 'उत्तरायण' पत्रिका में सहयोगी तथा 'अभिज्ञानम्' पत्रिका के उपसंपादक

**संग्रति** : जिला स्वा. शि. एवं सचूना अधिकारी, परिवार कल्याण विभाग, उ. प्र. से सेवानिवृत्त.

✉ 'विद्यायन', एस. एस. १०८-१०९, सेक्टर ई, एल. डी. ए. कॉलोनी, कानपुर रोड, लखनऊ-२२६०१२, मो.: ९४५०४४७५७९

और नैतिक था. अतः आकर्षण के बावजूद समाज एवं परिवार का कठोर अनुशासन, पाप-पुण्य की भावना और आदर्श की अवधारणा व्यक्ति को विपथगामी होने से बचाती थी.

● **जिला स्वास्थ्य शिक्षा एवं सूचना अधिकारी, परिवार कल्याण विभाग, उ. प्र. में कार्य करते हुए भी मधुकर अष्टाना एक सफल, समर्थ एवं युग-बोधक गीतों के पुरोधा बने - यह कोई सहज बात नहीं है, शारीरिक स्वास्थ्य का प्रक्षालन कब मन, आत्मा का प्रक्षालय करने लगा. थोड़ा बतायें.**

हां, जब मैं बी. ए. में पढ़ता था तो हिंदी के प्रवक्ता डॉ. किशोरी लाल गुप्त जो श्रेष्ठ छंदकार थे, अपनी रचनाएं प्रायः कक्षा में सुनाया करते थे जिसका प्रभाव पड़ा. साथ ही नगर के साहित्यिक कार्यक्रमों में भी सुनने का अवसर मिलता रहा और इसी प्रभाव में मैं भी कुछ प्रयास करने लगा. यह क्रम दोहा और घनाक्षरी से प्रारंभ हुआ. उस समय मैं पत्र भी दोहा और घनाक्षरी में ही लिखा करता था. राजकीय सेवा में आने पर मंचीय प्रभाव में गीत भी लिखना

प्रारंभ हुआ जो मेरे अग्रज श्री शतानंद जी संशोधित कर दिया करते थे. एक बार जहां मेरी नियुक्ति थी, पं. अलगू राय शास्त्री, वन मंत्री, उत्तर प्रदेश का आगमन होने वाला था. कार्यक्रम स्थानीय इंटर कॉलेज में था. जब स्वागत गान की चर्चा आयी तो मुझे यह उत्तरदायित्व दिया गया. तब मेरी आवाज भी काफ़ी अच्छी थी. स्वागत गान मैंने लिखा और पढ़ा भी. काफ़ी अच्छा जमा. मंत्री जी के साथ आये सूचना अधिकारी ने मेरा नाम नोट कर लिया और जनपद स्तरीय सरकारी कार्यक्रमों में मैं बुलाया जाने लगा. उस समय जनपद के प्रत्येक खंड क्षेत्र में वार्षिक महोत्सव सरकारी व्यय से होता था और उसमें कवि सम्मेलन अवश्य रखा जाता था. मेरे जनपद में २१ खंड क्षेत्र थे तो प्रत्येक वर्ष में मुझे २१ कार्यक्रम मिलने लगे और धीरे-धीरे मैं कवि बन गया. मेरी रचना सर्वप्रथम वर्ष १९६२ में 'रणभेरी' (उ. प्र. सरकार की पत्रिका) में प्रकाशित हुई थी. वियोग की पीड़ा जो लोगों को कवि बनाती है. उसका मेरे जीवन में सर्वथा अभाव रहा अतः मेरे प्रेमगीत भी परकीय न होकर स्वकीया शृंगार हैं शायद मेरी कठोर एवं

खुरदरी भाषा का भी यही कारण है।

● आपकी जीवन यात्रा बहुत दुर्गम रास्तों से गुजरने के बावजूद निरंतर प्रवहमान रही है। आपकी उर्जस्वित जीवन यात्रा नवगीत के शिखर तक कैसे पहुंची?

मेरी शासकीय सेवा अंत तक कमरे में बैठने वाली नहीं रही। गांवों में घूमने का, गरीबों के जीवन-संघर्ष और अभावों का अनुभव करने का भी पर्याप्त अवसर मिला है। मैंने गरीब जनता के शोषण, उत्पीड़न, सामाजिक, आर्थिक विसंगतियों को निकट से देखा और भुक्तभोगी भी रहा अतः खरी-खरी और यथार्थ कहने की बान पड़ गयी। आपातकाल से मैं पूरी तरह नवगीत ही लिखने लगा। आपातकाल में भी मैंने विरोध में गीत लिखे और वे प्रसिद्ध भी हुए। वर्ष १९७८ में मैं लखनऊ आया तो पूर्वांचल से संबंध कम हो गया तथा कवि सम्मेलनों से भी संन्यास ले लिया। गोष्ठियों में अब भी यथावत् जाता हूँ और स्वयं भी प्रतिमाह गोष्ठियों का संयोजक हूँ। अब तो मन को जब भी ठेस पहुंचती है तो गीत सृजन से ही अपने आक्रोश और पीड़ा का शमन करता हूँ। प्रायः गीत ही प्रिया है, सहयात्री है, जीवन है, शिखर का तो पता नहीं पर यात्रा निरंतर कर ही रहा हूँ।

● दादा, कोई तो ऐसा व्यक्ति या व्यक्तित्व होगा जो निरंतर आपके हृदय में अपनी उपस्थिति बनाये हुए होगा। कुछ अनुभव व्यक्तिगत या व्यक्ति विशेष?

मेरे अंतर्मन में इतने नासूर हैं जो मुझे भी अबूझ लगते हैं, उनका निरंतर रिसाव मन को पीड़ित रखता है। बचपन से जो पीड़ा हृदय में बैठ गयी वह जाती ही नहीं है। उसमें अपने ही लोग वृद्धि किया करते हैं और गीत-दीप में तेल डालकर बुझने ही नहीं देते बल्कि समय-समय पर बाती को उचका भी देते हैं। यों व्यावहारिक मित्र बहुत हैं किंतु सच्चा मित्र कोई मिला ही नहीं, व्यक्ति विशेष का नाम लेना किसी के हित में नहीं है। वही व्यक्तिगत पीड़ा जब व्यष्टि से समष्टि की ओर उन्मुख होती है तो पूरे समाज की पीड़ा बन कर गीतों में उतर जाती है। ज़रा सी चूक अपयश के अंधे गर्त में धकेलने के लिए काफ़ी है, सामाजिक संबंध मात्र स्वार्थ के संतुलन पर आधारित हैं। बहुत कुछ सोच समझकर कबीर की तरह कड़वी और कड़ी विचारधारा ही मेरे नवगीतों में व्याप्त है।

● दादा, आजकल गीत एवं नवगीत पर हर तरफ़ बहुत चर्चा हो रही है। आपके विचार जानना चाहूंगी दोनों पर, क्योंकि मैं भी कभी-कभी भ्रमित हो जाती हूँ कि आखिर इन दोनों के बारीक फ़र्क की व्याख्या कैसे करूँ?

गीत विमर्श का वर्तमान में निश्चित रूप से दौर चल रहा है जो नवगीत के लिए शुभ लक्षण है। कमोबेश गीत-नवगीत, जनवादी गीत आदि पर विचार तो हो रहा है और लोगों की दृष्टि स्पष्ट हो रही है। सीधी-सरल बात है कि गीत जिसमें नवता के साथ यथार्थपरक चिंतन दिखायी दे, नवगीत है। गीत कल्पनात्मक सौंदर्य एवं आलंकारिक कोमल कांत पदावली से अनुप्राणित होता है जो हमारा भोगा हुआ सत्य नहीं है, जिसमें मूल्यों एवं मानवीय पीड़ाओं का परिवीक्षण नहीं है। गीत अविचारित और वायवीय है किंतु नवगीत सुविचारित एवं तथ्यात्मक है। यद्यपि यह भी सत्य है कि जो छंद या गीत से नहीं गुजरा, वह अच्छा नवगीतकार भी नहीं हो सकता। कहने का तात्पर्य यह है कि नवगीत गीत का ही उत्तराधिकारी है, जिससे वह छांदसिक है, गेय है किंतु फिर भी जैनेरेशन गैप है जो दोनों में अंतर उत्पन्न कर देता है। जब छायावोदेत्तर गीतों में प्रगतिवाद आया तो वह नवगीत कहा गया। इस प्रकार गीत एवं प्रगतिवाद के मिलने से नवगीत का जन्म हुआ। सर्वप्रथम यह 'निराला' जी की रचनाओं में परिलक्षित हुआ। यह प्रगतिशील विचारधारा कबीर की रचनाओं में भी दिखायी पड़ती है। अतः प्रगतिवादी चेतना भारत में पहले से ही विद्यमान थी जिसने गीतों को नया रूप दिया।

साहित्य, समाज से अधिक तीव्रगामी है और अग्रसर रहते हुए समाज को नयी दिशा देता है, किंतु गीत प्रतिकामी होकर पिछड़ गया और कवि सम्मेलनों की शोभा बन गया जिससे कूप की मानसिकता का यह सृजन जल सड़ कर दुर्गंध देने लगा। ऐसी स्थिति में नवगीत के रूप में गीत का पुनर्जन्म हुआ। आम आदमी की पक्षधरता के साथ पुनः मानवता का पोषण करने लगा। गीत का उद्देश्य मनोरंजन रहा है जब कि नवगीत चिंतनपरक और ऐसा चिंतन जिसमें प्रगतिशील चेतना दिखायी पड़ती है। इस प्रकार जिस रचना में आम आदमी के दुख-सुख, राग-विराग, शोषण-उत्पीड़न, जीवन-संघर्ष, जिजीविषा, त्रासदी, विसंगति, विषमता, विघटन, विद्रूपता, विद्वेष, मानवीय

संबंधों में बिखराव, मानवता का क्षरण, संस्कृति का पतन आदि का यथार्थ और वास्तविक चित्रण होता है और जिसका केंद्र बिंदु संवेदना है वह नवगीत कहा जायेगा. 'नवगीत' खौलती संवेदनाओं की वर्ण-व्यंजना है, दर्द की बांसुरी पर धधकते परिवेश में भुनती ज़िंदगी का स्वर-संधान है, वह पछुवा के अंधड़ में तिनके की तरह उड़ते स्वस्तिक की कराह है. 'नवगीत भावना के खेत में उपजी संवेदनाओं की वह फ़सल है जिसमें पीड़ा की खाद पड़ती है और आंसुओं से सिंचाई होती है.' समसामयिक संदर्भों की गहन संवेदना और अपने परिवेश को अभिव्यक्ति देता नवगीत जिजीविषा का सामगान है अतः नवगीत अभिजात वर्गीय मनोरंजनार्थ लिखे गये नवगीतों की मानवता विरोधी प्रकृति के विरुद्ध शंखनाद है.

नवगीत में लोकगीतों की प्रतिकार एवं प्रतिरोधात्मक क्षमता, दोहे की संक्षिप्तता और ग़ज़लों की कहन के साथ नयी कविता का विचार भी विद्यमान है जो इसे प्रत्येक दृष्टि से काव्य साहित्य का प्रतिनिधि बनाता है. 'नवगीत रागात्मक अंतश्चेतना की संवेदना से व्यंजित, वह सहज शब्द यज्ञ है जिसके लघुतम छांदसिक कलेवर में, समान्य जन की पक्षधरता के साथ समकालीन भाव तत्व एवं विचार तत्व का समन्वय है.' नवगीत के तंतु जिन तत्वों से निर्मित होते हैं, उनमें प्रमुख हैं — मूल्य निष्ठा, सामाजिक सरोकार, समकालीनता और संवेदना — नवगीत की महीन बुनावट में सहजता, सरलता, प्रवाह और प्रसाद गुण की उपलब्धि हेतु प्रतीक-बिंब योजना, नवता, गेयता आंचलिक बोध, मुहावरेदानी मिथक का प्रयोग, साथ ही मज़बूत कथ्य के छांदसिक प्रारूप में कसावट भी है. अतः यह सत्य है कि नवगीत भी गीत ही है किंतु हर गीत, नवगीत नहीं होता. अंत में कहना चाहूंगा कि 'नवगीत विषमता, विसंगति, विरूपता, विद्रूपता, विखंडन, विघटन, शोषण-उत्पीड़न और मानव निर्मित कृत्रिम त्रासदी का विरोध करते हुए लोक गीतों की भांति प्रतिरोधी विचारों का विस्तार करता है. यथार्थगत चिंतन की मारक कहन इसे तेवर एवं धार प्रदान करती है और व्यंग्यात्मक व्यंजना में लोकोन्मुखता इसकी विशेष प्रवृत्ति है. ये सभी विशेषताएं गीतों में नहीं होतीं. अतः गीत एवं नवगीत का अंतर तथा दोनों की पहचान स्पष्ट है.

● आज की युवा पीढ़ी क्या सोचती है, क्या

करती है और क्या करना चाहती है – कुछ गड्डमड्ड-सा लगता है. रिश्तों की, संबंधों की विशालता या वैराट्य से लगभग अपरिचित है या रहना चाहती है. ऐसी दिशा भ्रमित पीढ़ी हमारे सम्मुख खड़ी है. क्या संदेश है आपका वर्तमान युवा पीढ़ी को?

वर्तमान युवा पीढ़ी, रातोंरात प्रसिद्धि की आकांक्षा करती है और उसका आदर्श — दूर दर्शन, आकाशवाणी और कवि सम्मेलन है. अध्ययन-मनन से कतराती है. ये सभी नवगीत के शत्रु हैं. ऐसे स्थानों पर केवल ठकुरसुहाती अथवा चाटुकारिता होती है. जब रचनाकार मंच पर जाता है तो वही सुना सकता है जो उसके श्रोताओं की मांग है. नवगीत व्यवस्था का आलोचक, अमर्ष और आक्रोश की अभिव्यक्ति है — ऐसी स्थिति में यश और अर्थ का प्रलोभन, युवा पीढ़ी को गुमराह कर देता है. साहित्य के लिए सृजन की राह दुर्गम है और साधना से ही पार की जा सकती है. अतः ऐसी स्थिति में मैं युवा पीढ़ी से कहना चाहूंगा कि अध्ययन और साधना के मार्ग पर चल कर स्थायी सुयश अर्जित करने का प्रयास करें, हिंदी साहित्य में अमर हो जायें तथा शताब्दियों तक याद किये जायें. युवा पीढ़ी को किसी भी दशा में अपने भारतीय संस्कार, संस्कृति, मूल्य निष्ठा, मानवता और करुणा का परित्याग नहीं करना चाहिए, उन्हें अपने समकालीन परिवेश, जन्म, संवेदना के प्रति समर्पित होना चाहिए जो उनके जीवन का उज्ज्वल पक्ष निर्धारित करेगा.

● दादा, आपने गीतकार, ग़ज़लकार, समीक्षात्मक निबंधकार, आलेख रचयिता आदि साहित्य की विभिन्न विधाओं में अपनी लेखनी के जादू से सम्मोहित किया है. आपकी लेखनी गद्य-पद्य में निरंतर प्रवाहमान रही है. आजकल आप क्या लिख रहे हैं – क्या सोच रहे हैं वर्तमान स्थितियों के विषय में – क्या है तस्वीर भविष्य की?

मधु जी, सैकड़ों आलेख, समीक्षाएं, भूमिकाएं आदि लिख चुका हूं. इसके अतिरिक्त तीन-चार नवगीत, ग़ज़ल, दोहा आदि संग्रहों की सामग्री अप्रकाशित पड़ी है. संपूर्ण अप्रकाशित सृजन के अतिरिक्त अभी लेखन भी निरंतर जारी है. दो तीन वर्षों के अंतराल पर किसी प्रकार एक पुस्तक आ पाती है. ऐसी स्थिति में अपनी प्रवृत्ति के

मधुकर अष्टाना के नव गीत

( १ )

किसी-किसी को दृष्टि  
शेष के पास  
सिर्फ आंखें  
कुछ ही भरें उड़ान  
शेष को  
व्यर्थ मिलीं पांखें,  
देने वाले ने तो  
खुले हाथ  
सब लुटा दिया  
जिसकी जो इच्छा थी  
उसने  
अपने आप लिया,  
निकल रहीं  
धरती पर अब तो नयी-नयी शाखें.  
लाग-डांट में  
बंटी जिंदगी  
अक्षय मंसूबे  
चौबे जी छब्बे बनने में  
रहे सिर्फ दूबे,  
जोड़ रहे सब  
अपनी-अपनी  
कटी हुई नाकें,  
चक्रव्यूह वाले चौराहे  
राहें अनजानी  
पाले हुए अहम्  
बेमतलब  
बांहे बेमानी,  
सबको पता  
न लोग किंतु  
अपने भीतर झांके.

( २ )

उछल गया बाजार  
न उछली आमदनी  
कड़ी धूप में  
पानी-पानी रामधनी,  
जेब हुई खाली  
पर भरा नहीं  
आधा थैला  
बचा न कोई रंग  
हो गया  
जीवन मटमैला,  
डहक रहीं सिसकियां  
किसी ने  
नहीं सुनी.  
कंचन की मूरत  
माथे पर जड़े हुए हीरे  
घिरती रही भीड़  
अंधियारे की  
धीरे-धीरे,  
दूह रहे मजबूरी  
पग-पग  
राहजनी,  
घास और पानी  
पोखर का  
काफ़ी भेड़ों को  
देकर खाद  
सींचना, निष्फल  
सूखे पेड़ों को,  
पेट और रोटी में  
रहती रोज़ ठनी.

( ३ )

चले जलाने  
लालटेन हम  
बिजली के घर में  
उलटे योग  
पढ़े खुशियों ने  
इस संवत्सर में,  
सूखे सावन-  
जलते भादों  
आंख लगी दुखने  
गज भर की छाती  
लेकर आये  
घुटने-घुटने,  
कांटे-कील  
भरे रहते  
बापू के बिस्तर में,  
सबकी साधें  
सबके सपने  
पड़े हुए परती  
लेकर बंजर कोख  
धरा की गोद रही जलती,  
लहर न आती  
अगियाये मौसम के नश्रतर में,  
बड़े लड़इया  
आल्हा-ऊदल  
बैठे मन मारे  
धुंधली-नज़र  
देखती अम्मा की  
दिन में तारे  
तितर-बितर भेड़ों के झुंड  
बहकते अंबर में.

## ‘मां धनपती देवी-स्मृति कथा साहित्य-सम्मान : २०१३’

वर्ष २०११ से प्रारंभ मां धनपती देवी-स्मृति कथा साहित्य सम्मान : २०१३ के लिए हिंदी कहानीकारों से घोषित रूप से मौलिक, अप्रकाशित व अप्रसारित कहानियां ई-मेल अथवा पंजीकृत डाक से ३० सितंबर २०१३ तक आमंत्रित हैं। कहानी स्पष्ट रूप से पठनीय, हस्तलिखित अथवा कंप्यूटर-टाइप होनी चाहिए। किसी भी आयु वर्ग के रचनाकार अपनी रचना फोटो तथा परिचय के साथ भेज सकते हैं।

२० दिसंबर २०१३ को सुलतानपुर में आयोजित विशेष साहित्यिक समारोह में उपस्थित सफल कथाकारों को अंगवस्त्रम् स्मृति-चिन्ह, प्रमाण-पत्र एवं नकद धनराशि (प्रथम रुपये-१५११, द्वितीय : १२११ एवं तृतीय : १०११ रु. मात्र) से समादृत किया जायेगा।

पुरस्कृत कहानियों के प्रथम प्रकाशन का अधिकार कथा समवेत को होगा।

### कहानियां भेजने का पता :

डॉ. शोभनाथ शुक्ल, संपादक ‘कथा समवेत’

‘साक्षी विला, १२७४/२८, बढैयावार, सिविल लाइन्स-२, सुलतानपुर (उ. प्र.)-२२८००१.

ई-मेल-kathasamvet.sln@gmail.com

फ़ो. : ०५३६२-२४१४१२, मो. ९४१५१३६२६७

अनुकूल सृजनरत रहा हूं। इस आयु में अर्थाभाव के रहते कोई योजना सुनिश्चित कर पाना संभव भी नहीं है। केवल सृजन ही मेरी नियति है जिसमें कोई कमी नहीं है। भविष्य के प्रति आशान्वित हूं। बदलना समय की नियति है। समय बदलेगा।

● वर्तमान नवगीत की दिशा एवं दशा तथा नवगीतकारों को क्या संदेश देना चाहेंगे, क्योंकि नवगीतकारों की पीढ़ी आप बनते हुए देख रहे हैं। ऐसे में आप जैसे विशिष्ट रचनाकार से दिशा निर्देश प्राप्त करना स्वयं में गौरवपूर्ण होगा।

नवोदित नवगीतकारों को मैं परामर्श देना चाहूंगा कि वे किसी नवगीतकार को अपना आदर्श न बनायें और न उसके जैसा लिखने की कोशिश करें। बल्कि उससे भी बड़ा बनने के लिए नये प्रतीक-बिंब और नयी भाषा शैली की खोज करें। पृष्ठ प्रेषण के स्थान पर कम लिखें लेकिन नया और अच्छा लिखें जिसमें वे एक दिन निश्चित रूप से सुयश के भागी होंगे।

● दादा, चलते-चलते एक प्रश्न और यदि पुनर्जन्म हुआ तो क्या बनना चाहेंगे?

मधु जी! यह प्रश्न आपने ऐसा पूछा जो संभवतः साक्षात्कार में किसी ने पूछा ही न हो! फिर भी प्रश्न है तो

उसका उत्तर भी देना है। इस संबंध में मैं यही कहना चाहूंगा कि यदि पुनर्जन्म हो तो उस समय साहित्य में जो काव्य विधा मानवता, मूल्य निष्ठा, सामाजिक सरोकार और संवेदना की अभिव्यक्ति में प्रतिष्ठित हो, उसी में सृजन कर सुयश प्राप्त करूं और आप जैसे ही स्नेही लोगों से मेरा संपर्क बना रहे। आपके सुख, स्वास्थ्य समृद्धि, दीर्घ जीवन एवं सुयश की कामना करता हूं।

दादा, आपने इतना समय दिया और आपको करीब से जानने का मुझे अवसर मिला। मैं आपकी सदाशयता के प्रति हृदय से अनुग्रहीत हूं। आपकी लेखनी सदा रसवंती रहे एवं आप स्वस्थ, प्रफुल्ल रहें इसी मनोकामना के साथ आपकी ही इन पंक्तियों के साथ आपसे विदा ले रही हूं।

‘हृदय को बांध लेता है

उमगती प्रीति का अर्पण ।

समय को बांध लेता है

तुम्हारे रूप का मधुवन ॥

श्रीमती मधु प्रसाद

२९, गोकुल धाम सोसायटी,

कलोल-महसाणा राजपथ,

चांदखेड़ा, अहमदाबाद-३८२४२४

मो. : ७९२३२९०८४९



बाइस्कोप

## भारतीय फ़िल्मों के महासृष्टा : कमलेश पांडे

✍ सविता बजाज

(साहित्य और फ़िल्म का चोली दामन का साथ है। हमारे विशेष अनुरोध पर जानी मानी फ़िल्म, टी.वी., मंच कलाकारा व पत्रकार सुश्री सविता बजाज 'कथाबिंब' के लिए चलचित्र जगत से संबद्ध साहित्यकारों के साथ बिताये क्षणों को संस्मरण के रूप में प्रस्तुत कर रही हैं। अगले अंकों में पढ़िए जलीस शरवानी व अज़ीम मलिक आदि के बारे में।)



इतिहास गवाह है, जब भी कोई महापुरुष धरती पर अवतरित होता है तो समुद्र में ज्वार आ जाता है। धरती पर झूठ और सच के पहरेदार पैदा हो जाते हैं, हवाओं में बवंडर उठता है और महापुरुष अपने साथ अनुयाइयों की बाढ़ लेकर आता है। आज से बरसों पहले बंबई की धरती पर आचार्य रजनीश नाम के पुरुष ने अपने आकर्षक व्यक्तित्व और प्रवचनों द्वारा इंसान के अंदर अपने आपको पहचानने, संभोग से सन्यास तक की लहर पैदा की जिसमें पूरा हिंदुस्तान बहने लगा। इसका ज़्यादा असर बॉलीवुड की बड़ी-बड़ी हस्तियों पर भी पड़ा और चारों तरफ़ जोगिया रंग में रंगे, बड़े-बड़े झब्बे पहने फ़िल्म स्टार, डायरेक्टर वगैरह नज़र आने लगे। ऐसा अदभुत नज़ारा मैंने बॉलीवुड में कभी न देखा था। अदभुत था सब कुछ! मैं भी ओशो के रंग में काफ़ी हद तक रंग चुकी थी। जोगिया वस्त्र भी धारण करती थी। मेरे कई साथी ओशो के रंग में रंग चुके थे। मसलन महेश भट्ट, विनोद खन्ना, गोल्डी, सूरज सनीम वगैरह। साथी कहते सविता तुम कहीं आश्रम खोल लो तो हमें पूना जाने की आवश्यकता नहीं पड़ेगी। पूना ओशो का मुख्य सेंटर था। मेरी पक्की सहेली स्मिता पाटिल जिसके साथ मैंने खूब फ़िल्में कीं, ओशो के रंग में डूब चुकी थी और विनोद खन्ना से उसकी अच्छी दोस्ती भी थी। उन दिनों एक लंबा दुबला-पतला, लंबे घने बालों वाला खूबसूरत, गबरू जवान जोगिया रंग का गाऊन पहने मुस्कराकर कहता — सविता मैंने ही आपके बुशवाले ऐड लिखे थे। आप पेंटल के साथ थीं ऐड में। ऐड बहुत मशहूर हुए। जल्द ही रेडियो, प्रोग्राम भी आपसे ही करवाऊंगा।

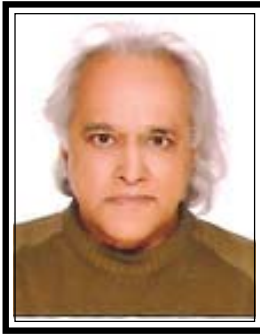
वह प्यारा-सा, खरा, इन्सानियत के रंग में रंगा सन्यासी ओशो भक्त आज की मशहूर हस्ती कमलेश पांडे

है जिन्होंने अपनी लेखनी के बल पर बॉलीवुड में जादू की छड़ी घुमायी। नाम, शोहरत, पैसा सब का धनी

है लेकिन आज भी कमलेश पांडे पहले जैसा ही है। न स्वभाव बदला और न ही शोहरत से क्रदम लड़खड़ाये, न ही आश्रम (पूना में) जाना छोड़ा। हां जोगिया गाऊन के बदले अब सीधा-सादा कुर्ता-पजामा पहनते हैं। आप जब नज़र के चश्मे से झांकते हैं और इनके होठों पर सदाबहार मुस्कान तैरती है तो ओशो की चुंबकीय आंखों की याद आती है। लगता है ओशो से ही मुलाकात हो गयी। जब मनुष्य को बड़ी-बड़ी फ़सीलों, बड़ी-बड़ी उपलब्धियों को किसी प्रभाव के साथ देखा जाता है तो इसकी चाक्षुष्कता सृष्टि में मनुष्य की स्थिति के बारे में एक तरह की दार्शनिक टिप्पणी बन जाती है। कमलेश जी का लेखन ऐसा है जो समय को प्रतिबिंबित करता है, आज के युग की चुनौतियों का उत्तर देता है। दर्शकों को एक अर्थपूर्ण अनुभव का आभास होता है जब उनकी रचनात्मक प्रक्रिया में भागीदारी का भाव बनता है। कमलेश जी का फ़िल्म लेखन देह, मानस और आत्मा को अकुंठभाव से खोलने की मांग करता है ताकि अकल्पित चुनौतियों का सामना किया जा सके। यकीन नहीं होता तो इनकी लिखी फ़िल्में जैसे 'तेजाब', 'सौदागर', 'रंग दे बसंती' देखिए। कहने की ज़रूरत नहीं कि लेखकों को खुले दिमागवाला, मनीषा संपन्न और अनुक्रियाशील होना चाहिए। ऐसी विलक्षण प्रतिभा के धनी, जीवंत किंवदंती हैं, हिंदी फ़िल्मों के 'कमलेश पांडे' जी।

कमलेश जी के बारे में लिखना जैसे सूरज को





हंसनगर, बलिया (बिहार) में जन्मे कमलेश पांडे इलाहाबाद और जबलपुर होते हुए १९६७ में बंबई आये. चार साल फ़ाकामस्ती के बाद १९७० में विज्ञापन एजेन्सी 'हिंदुस्तान थॉम्पसन' में कॉपी राइटर की नौकरी मिली.

३० वर्ष विज्ञापन की दुनिया, २० वर्ष फ़िल्मों और १४ सालों तक टेलीविजन से संबद्ध हैं. १९८७ से फ़िल्म लेखन में सक्रिय रहकर ४५ फ़िल्में लिखीं. कुछ के नाम हैं: 'जलवा', 'तेज़ाब', 'दिल', 'सौदागर', 'बेटा', 'चालबाज', 'खलनायक', 'अनकही', 'थोड़ा सा रूमानी हो जायें', 'रंग दे बसंती', 'दिल्ली-६'... आदि.

२०१२-१४ के लिए 'फ़िल्म राइटर्स एसोसिएशन, मुंबई' के सचिव चुने गये.

✉ २०१/२०२, रिचा बिल्डिंग, बी-२९, ऑफ न्यू लिंक रोड, अंधेरी (प.), मुंबई-४०००५३. फ़ो : २६७३३०२७, २६७०३१०८

चिराग़ दिखाने के बराबर है. वे एक प्रतिष्ठित लेखक हैं. अभूतपूर्ण व्यक्तित्व, विशेष उपलब्धियां प्राप्त करना एक गौरवमय बात है. व्यावसायिक रूप से भी आप बहुत लोकप्रिय हैं. कमलेश पांडे का नाम फ़िल्म इंडस्ट्री का पर्यायवाची है.

कमलेश जी फ़िल्म राइटर्स एसोसिएशन के सह-सचिव हैं और मैं वहां रजिस्ट्रेशन आफ़ीसर. जाहिर है अक्सर मिलना होता है. तो पाठकों एक दिन मैं कमलेश जी से कुछ यूं बातचीत कर रही थी—

◆ **कमलेश जी मैंने आपका वह आचार्य रजनीश वाला संन्यासी जीवन देखा है और आपके लिखे विज्ञापन में काम किया है. बाक़ी आपके बारे में कुछ नहीं जानती. प्लीज़ अपने बारे में बताइए ना.**

मैंने बचपन से ही कभी कोई ऐसा काम नहीं किया जो मुझे भाया न हो. बिहार का हूं — बलिया, हंस नगर का. हमारी खेती बह गयी. पूरा गांव ही बह गया. पहले इलाहाबाद आये फिर जबलपुर. मैं अंडर ग्रैजुएट हूं यानी कि बी. ए. भी नहीं किया. एक किसान का बेटा क्या करे, समझ नहीं आ रहा था. लिखने का बहुत शौक़ था, पेंटिंग करना भी अच्छा लगता था. बंबई आने पर जे. जे. स्कूल में भी था लेकिन कोर्स पूरा नहीं किया, तीन साल बाद छोड़ दिया.

१९६७-१९७१ तक मेरी भुखमरी की यात्रा जारी थी. घर से पैसा आता था, कभी सौ रुपये कभी सवा सौ. घर वाले मेरी तरफ़ से हार मान चुके थे क्योंकि मैं किसी

काम का नहीं था. परिवार में सब पढ़े-लिखे, बड़े-बड़े ओहदों पर थे. मेरे लिए मेरा भविष्य, अंधकारमय था.

◆ **आपको नहीं लगता ऐसे हालात में ही कुछ चमत्कार होता है?**

सचमुच सविता वे दिन मेरे बैंक बैलेंस जैसे थे. बड़े ख़ूबसूरत दिन थे. बहुत कुछ सीखा. मैं तो किसी काम का न था. बाल बहुत लंबे हो गये थे. सोचा कोई नौकरी दे दे तो बाल कटा लूंगा. शायद मैं उन दिनों तेईस साल का था. मैं हालात से, अपने आप से तंग आ गया. एक दिन एक जगह काम के लिए गया लेखन के सिलसिले में. 'हिंदुस्तान थॉम्सन्स' में बस कॉपी टेस्ट हुआ, मेरा लिखा उन्हें पसंद आया. पांच सौ से बढ़कर आठ सौ रुपये मिले और धीरे-धीरे पैसे बढ़ते गये और फिर अवाडों के ढेर लगने लगे और मुझ पर धन की वर्षा होने लगी. मुझे विज्ञापन की दुनिया का सबसे महारथी लेखक के नाम से जाना जाने लगा. जे. जे. स्कूल जो मैं छोड़ आया था, वहां से भी बहुत अवाड मिले. १९८६ में मेरा फ़िल्मों का लेखन अमोल पालेकर की 'अनकही' से शुरू हुआ. फिर तो फ़िल्मों की बाढ़ सी आ गयी.

◆ **जिंदगी ने, आपको सब दिया, इस बारे में आप क्या सोचते हैं और इसे रुपहले पर्दे पर कैसे उतारते हैं?**

जिंदगी को हर लहर से देखा है. मैं कभी किसी एक जगह से नहीं जुड़ा. शहर और गांव दोनों जीवन जिये. अगर आप नदी में उतर जाते हैं तो नदी के हो गये न! मेरे जीवन में ओशो के साथ जो रिश्ता है वह गुरु चले का रिश्ता है,

पिछले जन्म का है, जिसका न मुझे पता है. अंतर्धारा है वह, रूह का हिस्सा बन जाता है. गुरु हो या न हो, गुरु में शिष्य ज़िंदा रहता है. मैं तो जबलपुर में ही ओशो का हो गया था, कुछ था उनमें जो उनकी तरफ़ खिंचता गया. बाद में सन्यास ले लिया था.

♦ तो क्या अब संन्यास ख़त्म कर दिया?

नहीं, हां जोगिया चोगा पहनना छोड़ दिया. जब पूना जाता हूँ तो वहां आश्रम में पहनता हूँ. बाहर पहनना ज़रूरी नहीं. कपड़े की उपयोगिता थी, अपने आपको जगाने की उपयोगिता थी. उस ज़माने में लोग पत्थर मारते थे. गालियां भी खायीं. वह ज़माना हमारा इम्तहान था. गौतम बुद्ध के संन्यासियों को क्या-क्या भुगतना पड़ा होगा, आप समझ सकती हैं. हमारे लिए बाहर के काम की (यात्रा) और भीतर की (यात्रा) चल रही है. अब लगता नहीं कोई फ़ासला है, सब फ़ासले ख़त्म हो गये हैं.

मैं वही करता हूँ जो मैं करना चाहता हूँ. माहौल क्या है, इससे मुझे कोई फ़र्क़ नहीं पड़ता. मुझे वही काम मिला जिसके मैं क़ाबिल हूँ. मैं कहीं पहुंचने की जल्दी में नहीं. मैं, उस दौड़ में शामिल नहीं हूँ जिस दौड़ में बाक़ी शामिल हैं. मुझे किसी बात से फ़र्क़ नहीं पड़ता. अपने आपको बहुत किस्मतवाला मानता हूँ, ये ही सब बातें मेरे लेखन में आती हैं.

♦ आपके भी तो हालात बदल गये हैं?

नहीं, हालात नहीं बदलते. सिर्फ़ आदमी बदल जाता है. और अगर आदमी भी बदल जाये तो सारी दुनियां उसके लिए बदल जाती है. इसलिए जो भी हो रहा है होने दो, ओशो से मिला प्रसाद है. उपहार है इसलिए अब कोई फ़र्क़ नहीं पड़ता.

श्री पो. बॉक्स-१९७४३,  
जयराज नगर, बोरिवली (प.),  
फ़ोन : ९२२३२०६३५६

लघुकथा

आपदा-पीड़ित

श्री ज्ञानदेव मुकेश

बरसात के दिन थे. सुबह-शाम लगातार वर्षा होती रहती थी. नदियों में धार तेज़ होने लगी. बांध पर पानी का दबाव बढ़ने लगा. एक दिन पानी अचानक इतना उफ़ना कि बांध भार झेल नहीं पाया. वह टूट गया. चारों तरफ़ पानी भर गया. कच्चे मकान ढहने लगे. गांव के लोग इधर-उधर भागने लगे.

राहत के नाम पर सरकारी उपक्रम शुरू हुआ. एक ऊंचे स्थान पर राहत-शिविर लगा. बेघर हो चुके लोग वहां आकर रहने लगे. खाने और सोने का वहां इंतजाम होने लगा.

राहतकर्मि सामान जमा करने के लिए गांव, कस्बे, शहर में निकल जाते. वे बाढ़-पीड़ितों के नाम पर सामान मांगने में जबरदस्ती करने लगते. वे यह नहीं देखते कि देने वाला कुछ दान करने की योग्यता रखता भी है या नहीं. धूमते-धूमते वे एक ऐसे व्यक्ति के पास पहुंचे तो कंबल बेचकर किसी तरह गुज़ारा करता था. उसके पास कुछ नये कंबल थे. कंबलवाले की अगले ही दिन हाट जाना था. हाट में कंबल बेचकर उसे अपनी टूटी मड़ई की मरम्मत के लिए वैसे जुगाड़ने थे. राहतकर्मि ने वे कंबल देख लिये. वे कंबल उठाने लगे. कंबलवाले ने हाथ-पांव जोड़ लिये. उसने कहा, 'भैया, माफ़ कर दो. ये कंबल ही मेरा सहारा है. देनेवाले समर्थ लोग आपको आगे मिल जायेंगे. आप वहीं चले जाओ.'

मगर राहतकर्मि नहीं माने. उन्होंने सारे कंबल उठा लिये और चलते बने.

अगले ही दिन राहत-शिविर में कंबल बंट रहे थे. राहतकर्मियों ने देखा, कंबल पाने वालों की कतार में एक पहचाना चेहरा भी है. वे उसके पास गये. उन्होंने पाया, कल का कंबलवाला कंबल के लिए हाथ पसारे खड़ा था.

श्री आई.एन.मल्लिक का मकान, स्टेट बैंक के पास,  
शिवाजी कॉलोनी, पूर्णिया-८५४३०९ (बिहार)



## मानवीय सरोकारों की कहानियां

अशोक वशिष्ठ

**सूर्यबाला : संकलित कहानियां (क. सं.) : डॉ. सूर्यबाला**  
**प्रकाशक :** नेहरू भवन, ५ इंस्टी, एरिया, फेज़-(२),  
 वसंत कुंज, नयी दिल्ली-११००७०. मू. ९५ रु.

अपनी कहानियों में मानव सरोकारों के विकृत रूपों को मार्मिकता के साथ प्रस्तुत करने वाली डॉ. सूर्यबाला के इस संकलन में कुल मिलाकर पंद्रह कहानियां हैं. सूर्यबाला ने अपनी कहानियों में मध्यमर्गीय जीवन की विसंगतियों को उजागर किया है.

संकलन की पहली कहानी 'माई नेम इश ताता' तोतली बोली में अपना नाम 'ताता' बताने वाली बच्ची सुजाता की कहानी है. नीना अपनी बेटी का एडमीशन 'शहर के बेस्ट प्रेप' में करवाना चाहती है ताकि अपने ऑफिस में सहकर्मियों को दिखा सके और अपनी हारी हुई पारी को जीत में बदल सके. तोते की तरह बेटी को रटाने के बावजूद 'ताता' इंटरव्यू के वक्त गुमसुम हो जाती है. ऑफिस में अपना रौब और रुतबा कायम करने की कोशिश में तनाव झेल रहा शौनक बेटी की इस हरकत पर बौखला कर कह उठता है, "देना था वहीं ज़ोर का एक चांटा." नीना अलग परेशान. "... और फिर लोगों से क्या कहेंगे? तुम्हारे-मेरे कितने कुलींस, दोस्त, पहचान वाले... कि ताता इंटरव्यू में फेल.... एडमीशन नहीं हुआ. वही मध्यमवर्ग की अपने स्टैंडर्ड को लेकर हर पल सताने वाली चिंता.

संकलन की दूसरी कहानी 'रेस' में व्यक्ति की महत्वाकांक्षा और किसी भी परिस्थिति में सफलता के उच्चतम शिखर पर काबिज होने की उत्कट लालसा को उद्घाटित किया गया है. नायक सुधीर शुक्ला ने राशी के साथ मिलकर अपने वैवाहिक जीवन की आधार शिला बड़े प्रेमपूर्ण वातावरण में रखी थी. राशी अपने मासूम बेटे सुब्रत के साथ उसके बचपन के दिन बिताना चाहती है. लेकिन 'करियर' का भूखा और हमेशा इसके लिए सजग रहने वाला सुधीर अपने मासूम बच्चों को 'वैलहम स्कूल' में भेजने का फैसला कर चुका है. राशी तड़प उठती है, "पर मैं.... मैं तो उसके बचपन को बाहें भर-भर कर

समेटना चाहती हूँ... प्लीज़ उसे करियर की बंदिशों में मत बांधो." लेकिन सुधीर का मानना है कि वर्तमान हमेशा कल, को पाने का साधन है, बस.

रात-दिन तनावों में जी रहा सुधीर अपने गिरते स्वास्थ्य को नज़र अंदाज कर सबकी नज़रों में स्वस्थ बना रहना चाहता है. राशी और डॉक्टर शिंदे की चेतावनी को अनदेखा करने वाला सुधीर सोचता है, "तुम समझती क्यों नहीं, राशी, मैं रेस में हूँ. पिछड़ नहीं सकता." अंततः अपने प्रतिद्वंद्वियों बत्रा और कपूर को चांस दिये जाने पर सुधीर सहन नहीं कर पाता. अगले ही पल अपने केबिन में रॉकिंग चेयर पर अधलेटा सुधीर निस्पंद पड़ा टकटकी लगाये मिल की सबसे ऊंची धुआं उगलाने वाली चिमनी की ओर देखता हुआ मिलता है सबको.

कहानी 'मानुषगंध' के माध्यम से सूर्यबाला ने गिरते जीवन मूल्य, स्वार्थपरता और उत्तरदायित्व हीन दृष्टिकोण पर गहरी चोट की है. बच्चों में किडनी के रोग से संबंधित 'चाइल्ड नेफ्रोलाजी' की डिग्री लेकर भारत लौटने वाला वैभव चाहता है कि वह अपने देश में रहकर ही अपने चिकित्सीय ज्ञान का उपयोग करे ताकि बच्चे स्वस्थ व सुंदर बने रहें. लेकिन पूरे विश्व में उपभोक्तावाद और बाज़ार संस्कृति के पनपने से उसके मंसूबों पर पानी फिरता दिखता है. अपने ही देश में किडनी रोगों से निपटने के लिए एक संपन्न प्रयोगशाला की उसकी चाहत अधूरी रह जाती है. एक नंगा सच उसके सामने आता है कि किडनी बचाने का मतलब है किडनी की खरीद-फरोख्त करने वालों के पेट पर लात मारना. उधर असहाय और बेसहारा राधा के बेटे निकुंज को किडनी की बीमारी और फिर उसकी मृत्यु वैभव को झकझोर जाती है. वैभव निराश हो जाता है तो वह अमेरिका वापस जाने को विवश हो जाता है और डॉक्टर ब्राइसन के आमंत्रण को स्वीकार कर लेता है.

ऐसे ही भ्रष्ट समाज और खोखला हो चुके तंत्र की नंगी तस्वीर खींची गयी है कहानी 'होगी जय, होगी जय हे पुरुषोत्तम नवीन' में. वन अधिकारी अरुण वर्मा अलग क्रिस्म का अधिकारी है. उसे क्रदम-क्रदम पर अपनी इमानदारी की क्रीमत चुकानी पड़ती है. सड़े हुए प्रशासन तंत्र में वह एक अकेला अपनी लड़ाई बड़ी दिलेरी से लड़ता है. एम

एल ए महोदय के भतीजे के चिर परिचित ट्रक को अनियमितताओं की बिना पर पकड़ कर जैसे वह खुली जंग का ऐलान कर देता है. नतीजा वही हमेशा की तरह 'सस्पेंशन' और जीवट तो देखिए अरुण वर्मा की कि वह निर्लिप्त-सा घर में बैठा बीबी के हाथ के बने मूली के कुरकुरे परांटे खा रहा है. ऊपर से पालक और बैंगन की सब्जी भी बिलकुल अपने स्वर्गीय अफसर पिता की तरह जिसने शिक्षा विभाग में फैली अफसर शाही के खिलाफ बगावत की थी.

अगली कहानी 'जरी के फूल' एक सामान्य कहानी है जो एक लड़की के इर्द-गिर्द बुनी गयी है. यह अनाथ लड़की रुक्मी कहानी के पुरुष पात्र के संतुष्ट एवं सुखी वैवाहिक जीवन के बावजूद एक मधुर स्मृति की तरह उसके साथ बनी रहती है.

कहानी 'दिशाहीन' छोटे गांव के परिवेश से निकल कर महानगर के कॉलेज में इंजीनियरिंग की पढ़ाई करने गये एक सीधे-सरल युवक की बात करती है. गांव और कस्बे के स्कूलों में हमेशा अव्वल आने वाला युवक महानगरीय परिवेश में स्वयं को अनफिट पाता है. स्वयं को मॉडर्न लड़कों की संगति में पाकर वह अनचाहे ही उनके द्वारा दिखाई गयी दिशा में चलकर भटक जाता है.

कहानी 'सजायाप्रता' के माध्यम से सूर्यबाला एक संपन्न एवं आधुनिक परिवार में संयोग से ब्याही गयी निम्न मध्यम परिवार की शालिनी की मनोकामना व्यक्त करती है जो अपने मायके के अभावों के लिए क्रदम-दर-क्रदम अपमान सहने के लिए विवश है. उसका पति अपनी अमीरी और आभिजात्य वर्गीय चलन के द्वारा तथा उसकी सासु मां अपने हर शब्द पर रंग-रोगन चढ़ाकर उसके पिता जैसे भाई 'दादा' का खुलकर अपमान करते हैं और वह सब सहती रह जाती है, सजा पाये कैदी की तरह.

कहानी 'विजेता' की भाषा और कथ्य का प्रवाह पाठक पर अवश्य ही अलग तरह का प्रभाव छोड़ता है. इस कहानी के मुख्य पात्र को लेखिका ने बड़े कौशल्य के साथ बेनाम रखा है जो पूरी कहानी में अपने यार 'सुदामा' को संबोधित करता हुआ अपनी राम कहानी सुनाता है. वह 'बेनाम' अपनी त्रासदियों को भुलाने के लिए तथाकथित बड़े और अमीर सेट-सेटानियों के घर रसोईघर में काम करता हुआ छबीली भटियारिन और राजा भरथरी के नौटंकी के गीत गाता रहता है. बाहर से बेशर्म-सा दिखनेवाला यह 'बेनाम' अंदर से मजबूत और शरीफ है लेकिन हर बार उसके अस्तित्व को चुनौती दी जाती है.

हृद तो तब हो गयी जब बस में मंडी जाते समय उसका हुलिया देख पाकिटमारी का सीधा इल्जाम लगा दिया एक महिला ने उस पर. तिलमिला उठा वह. आव देखा न ताव उस 'बेनाम' ने जड़ दिया एक थप्पड़ महिला के पुते हुए गालों पर. अभिव्यंजना शैली से भरपूर कहानी पाठक पर अपना गहरा असर छोड़ती है.

सांप्रदायिक दंगों के दौरान शहर की हवाओं में कितना अविश्वास, कितना स्वार्थ, कितने षडयंत्र भर जाते हैं इसको व्यंग्य के साथ अभिव्यक्ति दी है सूर्यबाला ने कहानी 'शहर की सबसे दर्दनाक खबर' में. 'चंद्रा टॉवर' के तथाकथित संभ्रांत नागरिक शहर की हवा बिगड़ते ही चौकन्ने हो जाते हैं अपनी और कमाल साहब की सुरक्षा को लेकर. कमाल साहब अपने मजहब के बावजूद सामाजिक ताने बाने में ऐसे घुले-मिले हैं कि सुरक्षा के लिए अपनी पहचान बदले जाने पर वे आहत हो जाते हैं. उनका नाम कमल, बेगम का नाम रुकैया के स्थान पर रुक्मिणी रख दिया जाता है और माथे पर हिंदुओं की तरह बिंदी लगाने की हिदायत दी जाती है. कमाल साहब और उनका परिवार अपने प्र्लैट में सिमट कर रह जाते हैं. कमाल साहब की दाढ़ी सफ़ाचट हो जाती है. समाज से अलग-थलग कर दिये गये इस सभ्य परिवार की अंतर्व्यथा को सूर्यबाला ने बड़ी बारीकी से उद्घाटित किया है.

कहानी 'आदमकद' एक ऐसी बेहद बदसूरत स्त्री की कहानी है जो सूरत से तो आबनुसी कुरूपता वाली है किंतु उसकी सीरत को पहचान दी है लेखिका ने. जबर्दस्त जीवट वाली स्त्री है वह. निकम्मे और कर्महीन पति की मृत्यु के बाद अपने मासूम बच्चों के भविष्य की चिंता के साथ लाजवंती के दरवाजे पर वह दस्तक देती है. कड़ी मेहनत और जीवट के साथ वह सब कुछ ठीक करने पर आमादा है.

टीवी कार्यक्रम किस क्रदर आदमी की संवेदनशीलता पर आघात कर रहे हैं इसे दर्शाया गया है कहानी 'दादी और रिमोट' में. गांव से अपने बेटे के पास रहने आयी बूढ़ी दादी घर में अकेली है. सब अपनी आपाधापी में लगे हैं. दादी की रिक्तता भरने के लिए उनकी कोठरी में एक टीवी रख दिया गया है. दादी सिमट कर रह गयी है कोठरी तक. पूरा घर बच गया है उनकी टोका-टाकी और बिना मांगे दिये जाने वाले उपदेशों और निर्देशों से. शुरू में टीवी पर मार-धाड़ और खून-खराबे के दृश्य देखकर डर जाने वाली दादी धीरे-धीरे आदी हो जाती है जैसे दृश्यों की और वैसी घटनाओं की. इतनी आदी कि जब उनका छोटा नाती गली में हुए एक युवक की खून की खबर दादी को सुनाता है तो दादी

को न तो कोई आश्चर्य होता है और न कोई उत्तेजना. दादी कहती हैं, “अब ये तो आये दिन के टंटे हैं. कल ‘पेटी’ पे भी एकदम येई दिखाया था — रात-दिन ये ई चल रहा है. आठों पहर.” निर्लिप्त भाव से भरी दादी ऐसा कह कर चाय पीने की फरमाइश करती हैं.

कहानी ‘मटियाला तीतर’ के माध्यम से सूर्यबाला एक बार फिर कथासवेदना को विस्तार देती हैं. बड़े शहर की संपन्न गृह स्वामिनी ठेकेदारिनी की मदद से ‘मुलुक’ से दस-ग्यारह साल के गुबरैल-सा चेहरे वाले साक्षात काग भुसुंडि रूप वाले छोकरे को बुलवाती है. घर-किचन के काम के लिए. आरंभ में नये परिवेश से कटा-कटा रहने वाला ‘देवा’ धीरे-धीरे गृहस्वामिनी की चिकनी-चुपड़ी बातों में आ जाता है और घर के कामकाज में मन रम जाता है उसका. अपनी छोटी बाई (बहन), अपनी प्यारी मां, हर समय चरस-गांजा पिये रहने वाले अपने बाप और डुंगर पार के अपने मुलुक को हर पल याद करता रहता है. शुरू-शुरू में देवा को वापस उसके मुलुक भेजने को तैयार गृहस्वामिनी बाद में मौक़ा आने पर उसे वापस भेजने से मना कर देती है. मगर न जाने वह कैसे जान जाता है गृहस्वामिनी की चाल को और एक रात अदृश्य हो जाता है वह ‘मटियाला तीतर.’

‘सुनंदा छोकरी की डायरी’ की छोकरी सुनंदा को स्कूल की पढ़ाई छोड़कर मजबूर होना पड़ता है एक बंगले पर काम करने के लिए. ‘चा-पाव’ और चपाती-भात पाकर खुश हो जाने वाली सुनंदा को समझ में नहीं आता कि एक कंपनी में काम करने वाले ‘सा’ब’ के पास बंगला, गाड़ी, फ़ोन, गार्डन सब कुछ है और दूसरी ओर एक दूसरी कंपनी में काम करने वाले उसके बाप की कंपनी एकदम बंडल. “साब खाली दिन में काम करता न... मेरा बाप रात को भी. पन उसका तो कंपनी इतना मस्त खोली, कार, गाड़ी कुछ नई दिया. ऊपर से मेरा बाप का पांव पटेला पन टूट गया.” अपाहिज बाप दारू पीने के लिए लोगों को अपनी एक टांग का नाच दिखा कर पैसे मांगने लगता है. वह जताना चाहता है अपनी बीबी को कि वह भी कमा सकता है. जलालत भरी जिंदगी से मुक्ति पाने के लिए मां अपने झोपड़े में आग लगा लेती है और सदा के लिए सुखी हो जाती है. सुनंदा छोकरी उसी स्कूल में झाड़ू लगाने का काम करने लगती है और उसके भाई-बहन कचरा चुनने का. नितांत नंगा सच उकेरा गया है सामाजिक विषमता का इस कहानी में.

अगली कहानी को सूर्यबाला ने शीर्षक दिया है

‘रहम दिल’ क्योंकि अनपढ़ और क़ानून न जानने वाले मज़दूर रेलवे यात्रियों को टिकट बाबू और पुलिस वाले क़ानून का डंडा दिखा कर लूट लेते हैं फिर भी ‘रहम दिल’ बने रहते हैं उनकी नज़रों में. ‘भइया गाड़ी’ में बैठकर मुंबई से अपने मुलुक तक सपरिवार यात्रा करने वाले रहमत अली का नाम रिजर्वेशन चार्ट पर आर. अली लिखा है जो सही है. रहमत अली की अज्ञानता का लाभ उठाकर टिकट बाबू ग़लत नाम बता कर उससे पैसे ऐंठ लेता है और इस में साथ देते हैं पुलिसवाले. इतने पर भी रहमत अली को लगता है कि उसे क़ानून के सिकंजे से निकालने वाला पुलिसवाला बड़ा रहम दिल था.

सूर्यबाला ने अपनी कहानियों में पारिवारिक निकटताओं को भरपूर स्थान दिया है. स्त्री-पुरुष के बीच स्वाभाविक आकर्षण को सहज रूप से अपनी कहानियों में चित्रित किया है. संकलन की अंतिम कहानी ‘पीले फूलों वाली फ़ॉक’ में लेखिका ने अपनी-अपनी गृहस्थी में खुश और संतुष्ट स्त्री-पुरुष के बीच बाईस साल पहले के पैदा हुए आकर्षण और लगाव को दर्शाया है. आकर्षण और प्रेम की पवित्रता की रक्षा करते हुए लेखिका ने इस कहानी के कथानक को सहजता प्रदान की है.

सूर्यबाला के इस संकलन की अधिकतर कहानियों में घर-संसार के संबंधों को परखा गया है. इनमें मध्यम वर्गीय समाज के जटिल व्यवहार और छल-कपट का कोरा चिट्ठा लिखा गया है. आलोचनात्मक शैली को बड़े मार्मिक ढंग और साफ़गोई के साथ अभिव्यक्ति दी गयी है और भावनाओं को पूर्णता के साथ पिरोया गया है.

सी-६०३, सागर रेसीडेंसी, सेक्टर-२७, नेरुल (पूर्व), नयी मुंबई-४००७०६, मो.: ९८६९३३७६१८

## सिंबोलिक पैटर्न में बात करती कविताएं

दीप्ति दुबे

रेहड़ी (का. सं.) : पंकज रामेंदु

प्रकाशन : हिंद युग्म प्रकाशन, जिया सराय, हौज खास, नयी दिल्ली-११००१६१ मू. २०० रु.

‘रेहड़ी’ पंकज रामेंदु का पहला कविता संग्रह है. कविताएं लिखना जहां कॉलेज तक की जिंदगी में बहुत ही

फैशनेबल माना जाता है, असल ज़िंदगी में उतना ही अव्यवहारिक (कम से कम आज के समय में) भी. ऐसे में पंकज की 'रेहड़ी' स्वागत योग्य है. अपने नाम को सार्थक करती इस 'रेहड़ी' में आप हर भाव, हर रस और हर परिस्थिति पर कविताएं पढ़ सकते हैं. ज़िंदगी की उथल-पुथल और ज़िंदगी में अपनाये जा रहे शॉर्टकट्स पर चिंता जताते हुए वे लिखते हैं — 'कभी-कभी मंज़िल पर अहसास होता है, शॉर्टकट तो कुछ था ही नहीं. बस अपना तय किया रास्ता था, अपनी सहूलियतें थीं...'

उनकी कविताएं दरअसल, गुज़रते जीवन और समय के गोपन रहस्यों को सहसा अनावृत्त कर देने की युवा कवि की विद्रोही मानसिकता से उपजी हैं. उनकी कविताओं में कई जगह व्यक्तिगत अनुभव नज़र आते हैं. जैसे उनकी 'इबारत' कविता की ये पंक्तियां — 'हमारी पिछली इबारत जिस पत्रे पर लिखी थी/वे पत्रे मैं तुमसे बगैर बताये/चुरा लाया था/तुम हमेशा से ही लापरवाह रही हो/मुझे डर था की तुम इन यादों को भी खो दोगी.' या कहीं वे कहते हैं — 'रोज़ दिल का दरवाज़ा ठीक से बंद करता हूँ/लेकिन रोज तुम्हारी यादों का सूरज/किसी ना किसी झिरी से झांक लेता है.' वहीं उनकी कविताओं में समाज के बुद्धिजीवियों के प्रति रोष भी जाहिर होता है — 'बुद्धिजीवियों के पिरान्हा रूप समूह ने/साहित्यिक मांस को नोच डाला था/शब्दों के गोश्त को चबा-चबाकर/सब कुछ पचा गये/और सुबह की जुगाली में/दांत में फंसे हुए गोश्त के टुकड़े को/किसी पैनी चीज़ से कुरेद कर निकाल फेंका था.'

पंकज की इसी रेहड़ी पर आपको रिश्तों की मिठास भी मिल जायेगी. प्यार का पहला अहसास भी आपको उतना ही गुदगुदायेगा, जितना मां-पापा का स्नेह याद आयेगा. मसलन 'बचत' कविता कहती है — 'मां को बचपन से घर संभालते देखा/थोड़े में से, बहुत निकालते देखा/पता नहीं कौन सी करामात हैं/ज़रूरतों की जब भी ज़रूरत पड़ी/उन्हें पूरा करने में कोई लड़ाई नहीं लड़ी. उनकी कविताओं में दृष्टान्तों की एक पर्यटक मस्ती है जो कभी भी चौंका सकती है — यह न सही तो यह सही की शैली में अर्थों और संकेतों का एक झूमता हुआ गतिशील और बेफिक्र कविता-संसार है. जहां सब कुछ कविता के एकांत में घटित होता है, सामाजिक वर्जनाओं की चिंता छू तक नहीं पाती. पंकज की कविताएं संप्रेषण

की क्रीड़ा और कौतुक के शिल्प में रमती हैं. उनकी कविता में अर्थों और संकेतों की आंख-मिचौली है. पंकज रामेंदु अप्रत्याशित सृजनशीलता के कवि हैं.

नयी उपमाएं गढ़ का सिंबोलिक पैटर्न में बात करना उनकी खासियत है जिसके ज़रिये वे किसी ऐसे दृश्य को आपके सामने प्रस्तुत कर देते हैं जो आप रोज़ाना देखते हैं और उसके साथ वे आपकी संवेदनाओं पर चोट कर जाते हैं, मसलन 'सामान्य सब कुछ' कविता का अंदाज कहता है — 'मासूम १२ वर्षीय ग़रीबी ने/मजबूर के ६ गिलासों को/वक्रत की ५ उंगलियों से थामा/वक्रत फिसला और मजबूरी के कांच बिखर गये/चटाक की ध्वनि हुई/और मासूम ग़रीबी सिसकती नज़र आयी/ध्वनि से सबका ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया/फिर सब कुछ सामान्य था.' वहीं 'फ़र्क' कविता के माध्यम से वो स्वाभिमान और अपमान में फ़र्क समझा जाते हैं — 'शांत चित होने में खराबी कुछ नहीं/बस ये फ़र्क मालूम रहे/किसी जगह पर गाल बढ़ाना है/किस जगह पर हाथ उठाना है/क्रोध भी जीवन का सृष्टा हो सकता है/और शांत मन/एक क्रदम के फ़ासले पर कायर.' वहीं 'जीवन का औचित्य नहीं.' कविता निर्भयता की बात करती है जो किसी भी निर्णय लेने से पहले सोचने वाले कायर मन, हमेशा क्रदम पीछे हटाने की प्रवृत्ति रखने वाली फितरत पर चोट करती है.

इनका वैशिष्ट्य उनके वैश्विक बाज़ार युग की युवा मानसिकता और दृष्टि से लोक और समय का साक्षात्कार करने वाली कविताएं होने में है. कब्ज़, बुढ़ाता पेड़, मसाला, सच, चक्र, तुम नहीं जानते, डायरी, लकीरें, बाज़ार कविताएं न सिर्फ़ शीर्षक, विषय और संरचना में पंकज की अलग पहचान बनाती हैं, बल्कि जीवन के साक्षात्कार और परिकल्पना में भी. वही बड़ा ही मुश्किल होता है. कभी सोचा है, उम्मीद की गठरी, शूतुरमुर्ग, कभी महूसस किया है. 'जैसी अनेक अभिव्यक्तियां पंकज को अभूतपूर्व, साहसिक, समर्थ और अविस्मरणीय कवि बनाती हैं.

अस्सी कविताओं की इस रेहड़ी पर संतुलित और मर्मस्पर्शी अहसासों के सारे स्वाद आप चख सकते हैं. शर्त बस यही होगी कि इन कविताओं को कवि से सहमत होते हुए नैतिकता संबंधी बिना किसी पूर्वग्रह के, जीवन के स्वाद के रूप में चखा जाये.

डी-१५९ कालीमंदिर के पास, गली नं.

५, गणेश नगर, नयी दिल्ली-१०००९२.

फ़ोन : ९८९९६०८४८९

## “कमलेश्वर स्मृति कथा पुरस्कार-२०१२”

“कथाबिंब” के प्रकाशन का यह ३५वां वर्ष है। एक अभिनव प्रयोग के तहत प्रतिवर्ष पत्रिका में प्रकाशित कहानियों को पुरस्कृत करने का उपक्रम हमने प्रारंभ किया हुआ है। पाठकों के अभिमतों के आधार पर वर्ष २०१२ के “कथाबिंब” के अंकों में प्रकाशित कहानियों का श्रेष्ठता क्रम निम्नवत रहा। सभी पुरस्कार विजेताओं को बधाई ! विजेता यदि चाहें तो इस राशि में से या तो वे स्वयं “कथाबिंब” की आजीवन या त्रैवार्षिक सदस्यता ग्रहण कर सकते हैं अथवा अपने किसी मित्र/परिचित को सदस्यता भेंट कर सकते हैं। कृपया इस संदर्भ में शीघ्र सूचित करें। हम अत्यंत आभारी होंगे।

: सर्वश्रेष्ठ कहानी (१००० रु.):

● **तो का करें... ?** - आशा अख्यर “कनुप्रिया”

: श्रेष्ठ कहानी (७५० रु.):

● **रंगों का पटाक्षेप** - वंदना शुक्ला ● **घर के लिए** - डॉ. देवेंद्र सिंह

: उत्तम कहानी (५०० रु.):

● **युगांत** - महेश कटारे “युगम” ● **शिनाख्त** - अशोक कुमार प्रजापति

● **पलायन** - विवेक द्विवेदी ● **अन्ना की टोपी** - युगेश शर्मा

● **रिश्तों की भुरभुरी ज़मीन** - मधु अरोड़ा

## फॉर्म-४

समाचार पत्र पंजीयन केंद्रीय कानून १९५६ के आठवें नियम के अंतर्गत “कथाबिंब” त्रैमासिक पत्रिका से संबंधित स्वामित्व और अन्य बातों का विवरण :

- |   |   |  |
|---|---|--|
| १. प्रकाशन का स्थान   | : | ज्ञानेश्वर माउली प्रिंटर्स, न्यू पत्रा शेड,<br>चुन्नीलाल कंपाउंड, मुंबई - ४०० ०३३. |
| २. प्रकाशन की आवृत्ति   | : | त्रैमासिक  |
| ३. मुद्रक का नाम  | : | मंजुश्री   |
| ४. राष्ट्रीयता  | : | भारतीय   |
| ५. संपादक का नाम, राष्ट्रीयता एवं पूरा पता                          | : | उपर्युक्त, ए-१० बसेरा, ऑफ दिन-क्वारी रोड,<br>देवनार, मुंबई - ४०० ०८८.              |
| ६. कुल पूंजी का एक प्रतिशत से अधिक शेयर वाले भागीदारों का नाम व पता | : | स्वत्वाधिकारी - मंजुश्री   |

मैं, मंजुश्री घोषित करती हूँ कि मेरी जानकारी एवं विश्वास के अनुसार उपर्युक्त सभी विवरण सत्य हैं।

(हस्ताक्षर - मंजुश्री)



# T.A. CORPORATION

8, Dewan Niketan, Chembur Naka, Chembur, Mumbai - 400 071.

Ph. : (off): + 91-22-25223613 / 67974515 / 6596 1234

Fax : + 91-22-25223631 • Email : tac@vsnl.com

• Website : [www.chemicalsandinstruments.com](http://www.chemicalsandinstruments.com)

## ★ Offers ★

- H.P.L.C. GRADE CHEMICALS
- SCINTILLATION GRADE CHEMICALS
- GR GRADE CHEMICALS
- DIOCHEMICALS
- STANDARD SOLUTIONS
- HIGH PURITY CHEMICALS
- ELECTRONIC GRADE CHEMICALS
- LR GRADE CHEMICALS
- INDICATORS
- LABORATORY INSTRUMENTS

Manufactured by :

## PRABHAT CHEMICALS

C1B, 1909, G.I.D.C., Panoli, Dist. Bharuch, Gujarat,

Ph.: 02646-272332

email: [response@prabhatchemicals.com](mailto:response@prabhatchemicals.com)

website : [www.prabhatchemicals.com](http://www.prabhatchemicals.com)

### Stockist of:

- Sigma, aldrich, Fluka, Alfa, (U.S.A.)
- Riedel (Switzerland)
- Merck (GDR)
- Lancaster (UK)
- Strem (UK)





मूल्य : 800 रु.

संपादक : डॉ. अरविंद

## आमले-सामने

("कथाबिंब" के "आमले-सामने" संग्रह में प्रकाशित  
22 पुरुष-रचनाकारों के आत्मकथ्यों का संकलन.)

: प्रकाशक :

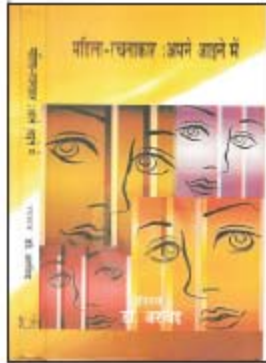
भाबना प्रकाशन

108 ए, पटपटगंज, दिल्ली-110091.

फोन : 220966038,

मो 09312699880

"कथाबिंब" के लेखकों और पाठकों के लिए 20% छूट. सीधे प्रकाशक से संपर्क करें.



मूल्य : 290 रु.

## महिला-रचनाकार : अपने आइने में

("कथाबिंब" के "आमले-सामने" संग्रह में प्रकाशित  
12 महिला-रचनाकारों के आत्मकथ्यों का संकलन.)

: प्रकाशक :

भारत विद्या निकेतन

131, चित्तरंजन एवेन्यू,

प्रथम तल, कोलकाता-700 073

: एक मात्र वितरक :

मानव प्रकाशन

131, चित्तरंजन एवेन्यू,

प्रथम तल, कोलकाता-700 073

"कथाबिंब" के लेखकों और पाठकों के लिए 20% छूट. सीधे वितरक से संपर्क करें.

फोन : 033-22664622 व 09639461409.

# मध्यप्रदेश है अब भारत का सबसे तेजी से बढ़ता प्रदेश

भारत सरकार के अनुसार मध्यप्रदेश की विकास दर बड़े राज्यों में अग्रणी है, प्रदेश की सकल घरेलू उत्पाद दर वर्ष 2002-03 को -4.1% को नकारात्मक वृद्धि दर से बदलकर अब 2012-13 में 10.02%। बीजापुर राज्य से जुझारु राज्य और फिर गुवाहाटी राज्य का सफल तब किया है इन्होंने मात्र 9 वर्षों में, आइये, मिलकर बनाएं देश का सर्वश्रेष्ठ प्रदेश, अपना मध्यप्रदेश.



**मध्यप्रदेश सरकार**

साफ नीयत | स्पष्ट नीति | सुबुद्ध प्रशासन

मध्यप्रदेश सरकार का लोगो

संजुषी द्वारा संपादित व सानेसकर मालवी रिटर्न, रेतीवाला इंडस्ट्रीज के पास, न्यू पत्रा रोड, सुशीला कंसाउंड, मुंबई - ४०० ०३३ में मुद्रित.  
टाईप सेटर्स: वन अप रिटर्न, १२वां रास्ता, झारका कुंज, बैबूर, मुंबई - ४०० ०७९. फोन - २५५९५५७९